



मजदूर बिगुल

व्हाट्सअप पर
बँटती अफ़ीम

6

विश्व स्तर पर सुरक्षा खर्च
और हथियारों के व्यापार
में हैरतअंगेज़ बढ़ोत्तरी

13

किसान आंदोलन : कारण
और भविष्य की दिशा

16

भारतीय अर्थव्यवस्था का गहराता संकट और झूठे मुद्दों का बढ़ता शोर

आने वाले कठिन दिनों में जूझने के लिए एकजुटता मज़बूत करो!

भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया की सबसे तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से है, इसका शोर काफी दिनों से मचाया जा रहा है। हालाँकि इसका मतलब यह कतई नहीं होता कि अर्थव्यवस्था संकट में नहीं है। बढ़ने की उम्र हो तो बीमारी के बावजूद शरीर बढ़ता रह सकता है। विश्व पूँजीवाद की बुढ़ापे की सन्तान भारतीय पूँजीवाद में देश की जनता को बुरी तरह निचोड़कर कुछ समय तक फैलने की गुंजाइश बची हुई थी, इसीलिए जब दुनिया भर के उन्नत पूँजीवादी देशों में विकास दर एक-डेढ़ प्रतिशत पर अटक गयी है तो भी भारत जैसे "विकासशील" देशों में 7-8 प्रतिशत की दर से विकास हो रहा था। यह अलग बात है कि इस विकास

का मतलब एक छोटी-सी आबादी के लिए ही सुख-समृद्धि था, देश की भारी बहुसंख्या तो अब भी भीषण गरीबी और जीवन की बुनियादी सुविधाओं की कमी के बीच जी रही है।

मगर यह तेज़ विकास भी बहुत समय तक चलने वाला नहीं है। पिछले एक दशक के दौरान बीच-बीच में अर्थव्यवस्था की गाड़ी सुस्त पड़ती रही है। पूरी विश्व अर्थव्यवस्था में लम्बे समय से बने हुए संकट का भी असर इस पर पड़ता रहा है। **तमाम देशी पूँजीपतियों ने मिलकर नरेन्द्र मोदी की फ़ासिस्ट पार्टी को सत्ता में इसीलिए पहुँचाया था ताकि किसी भी तरह के विरोध को कुचलकर, लोगों को बाँटकर, मेहनतकशों को और भी बुरी तरह**

सम्पादक मण्डल

निचोड़कर धन्नासेठों के मुनाफ़ों को बचाये रखा जा सके। पिछले तीन साल में मोदी सरकार सिर्फ़ और सिर्फ़ यही काम करती रही है। बाकी सबकुछ सिर्फ़ जुमलेबाज़ी है। लेकिन अर्थव्यवस्था फिर से गम्भीर संकट में फँस चुकी है!

तात्कालिक तौर पर इसे पिछले वर्ष हुई नोटबन्दी का झटका लगा है। वित्तमंत्री 'झूठली' द्वारा आँकड़ों में हेरफेर करने के तमाम हथकण्डों के बावजूद सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में भारी गिरावट आयी है। वित्तीय वर्ष 2017 की चौथी तिमाही में स्थिर मूल्यों पर सकल मूल्य-वर्धित विकास (जीवीए)

की दर घटकर 5.6 प्रतिशत पर आ गयी। वास्तविक गिरावट इससे भी ज़्यादा है। अगर "सार्वजनिक प्रशासन, रक्षा और अन्य सेवाओं" में हुए भारी खर्च को निकाल दिया जाये, तो विकास दर मात्र 4.1 प्रतिशत रह जायेगी। और अगर पिछले वर्ष अच्छी बारिश के कारण खेती में हुई अच्छी पैदावार को देखते हुए कृषि को इस हिसाब से बाहर करके जोड़ा जाये तो शेष अर्थव्यवस्था की विकास दर केवल 3.8 प्रतिशत रह जाती है। इसका असर समझने के लिए, अगर हम पिछले वर्ष, यानी वित्तीय वर्ष 2016 की चौथी तिमाही में इसी प्रकार सरकारी खर्च और कृषि को हटाकर हिसाब लगायें तो उस वक्त शेष अर्थव्यवस्था में विकास की दर 10.7

प्रतिशत थी। यानी एक वर्ष में करीब 7 प्रतिशत की भारी गिरावट आयी है।

नौकरियों में भारी गिरावट, छँटनी, बेहिसाब महंगाई, ये सब गिरती अर्थव्यवस्था की जनता के लिए सौगते हैं। आने वाले समय में इनमें और बढ़ोत्तरी ही होनी है। अर्थव्यवस्था का ग्राफ़ जैसे-जैसे नीचे आ रहा है, झूठे मुद्दों और जुमलों का शोर वैसे-वैसे बढ़ता जा रहा है। आने वाले दिन अच्छे नहीं होने वाले हैं।

आँकड़े बताते हैं कि पिछले वित्तीय वर्ष की चौथी तिमाही में सकल विकास में प्रशासन, रक्षा और अन्य सेवाओं पर हुए खर्च का हिस्सा 35.6 प्रतिशत रहा जोकि पिछले वर्ष से करीब एक तिहाई (पेज 8 पर जारी)

बेहिसाब बढ़ती छँटनी और बेरोज़गारी

मुकेश

छँटनी और बेरोज़गारी इस वक़्त पूरे देश की आम मेहनतकश जनता के लिए एक भारी चिन्ता का विषय है। 2014 के चुनाव के पहले भारतीय जनता पार्टी और उसके नेता नरेन्द्र मोदी ने पिछली सरकार की रोज़गार सृजन न कर पाने के लिए तीव्र आलोचना की थी और इसे अपना मुख्य लक्ष्य बताते हुए प्रति वर्ष करोड़ों नयी नौकरियाँ देने का वादा किया था। लेकिन वस्तुस्थिति इसके ठीक उलट है। 2015-16 के आर्थिक सर्वे में कहा गया कि 2011-12 में बेरोज़गारी 3.8% थी, जो 2015-16 में बढ़कर 5% हो गयी। वैसे यह संख्या और भी ज़्यादा है क्योंकि किसी भी काम में साल के कुछ भी दिन लगे व्यक्तियों को

इसमें बेरोज़गार नहीं गिना जाता। साथ ही, 8 श्रम केन्द्रित क्षेत्रों में 2011-12 के 9.3 लाख के बजाय 2015 में मात्र 1.35 लाख नयी नौकरियाँ ही जुड़ीं। जुलाई 2014 से दिसम्बर 2016 के पूरे ढाई साल में उद्योग, निर्माण, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सूचना प्रौद्योगिकी, होटल/रेस्टोरेण्ट और यातायात के मुख्य रोज़गार प्रदाता क्षेत्रों में मात्र 6 लाख 41 हजार नौकरियाँ ही मिलीं। साथ ही 2016-17 का आर्थिक सर्वे यह भी बताता है कि रोज़गार की प्रकृति भी स्थाई रोज़गार के बजाय अस्थायी और संविदा/ठेका रोज़गार की होती जा रही है जिससे श्रमिकों की मजदूरी, रोज़गार स्थायित्व और सामाजिक सुरक्षा पर बेहद बुरा असर पड़ रहा है।

मोदी सरकार ने रोज़गार के लिए पाँच मुख्य योजनाएँ शुरू की थीं - मेक इन इण्डिया, स्टार्ट अप, डिजिटल इण्डिया, स्किल इण्डिया तथा स्मार्ट सिटी। लेकिन इन पाँचों का अब तक कहीं कोई असर नज़र नहीं आया है। पहले ही क्षमता से नीचे चलते उद्योगों की स्थिति में नये निवेश की गुंजाइश ही नहीं है इसलिए मेक इन इण्डिया का नतीजा क्या निकल सकता था? स्टार्ट अप जो शुरू भी हुए थे, उनकी हवा पहले ही निकलनी शुरू हो चुकी है। डिजिटल के क्षेत्र का तो सबसे बुरा हाल सबको मालूम ही है कि आईटी की इन कम्पनियों में तो लाखों की तादाद में कर्मचारियों को बाहर का रास्ता दिखाया जा रहा है। स्मार्ट सिटी का क्या

हुआ किसी को मालूम नहीं; और बिना रोज़गार देने वाले कारोबार के सिर्फ़ स्किल इण्डिया में कौशल प्रशिक्षण एक नौटंकी से बढ़कर क्या हो सकता है क्योंकि बेरोज़गारी की वजह कुशलता का अभाव नहीं नौकरियों की कमी है।

मैनपावर ग्रुप ने 4910 रोज़गार दाताओं के सर्वे के नतीजे जारी किये हैं। इनके अनुसार वैश्विक अर्थव्यवस्था में अनिश्चितताओं के चलते ये रोज़गार दाता या कम्पनियाँ 2005 के बाद से अब तक की सबसे निराशाजनक स्थिति महसूस कर रही हैं और जुलाई-सितम्बर 2017 में लगातार छठी तिमाही भर्तियाँ कम होने वाली हैं। यह भी बताया गया कि सभी कम्पनियाँ अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए नयी तकनीकों का प्रयोग

कर कर्मचारियों की संख्या को सीमित रखना चाहती हैं। इसलिए वे भर्ती बढ़ने के बारे में आशावादी नहीं हैं। उद्योग, खनन, वित्त, बीमा, सम्पत्ति और निर्माण सभी बड़े रोज़गारदाता क्षेत्रों में भर्तियों की तादाद कम होने की सम्भावना है सिर्फ़ थोक व फुटकर व्यापार अर्थात् दुकानों ही एक क्षेत्र हैं, जहाँ कुछ नौकरियाँ दिखाई दे रही हैं। (इकोनॉमिक टाइम्स, 14 जून)

खुद इकोनॉमिक टाइम्स ने नौकरियों की स्थिति पर 11 हजार कर्मचारियों के बीच एक सर्वे किया और निष्कर्ष निकाला कि छँटनी सिर्फ़ एक अफ़वाह मात्र नहीं बल्कि कर्मचारियों के लिए एक वास्तविक सिर पर खड़ी आफ़त

(पेज 9 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

महान भारत में औरतों के नहाने के लिए बन्द- बाथरूम भी नहीं

शारीरिक सफ़ाई हर मनुष्य की शारीरिक और मानसिक तन्दरुस्ती के लिए बहुत ज़रूरी है। लेकिन भारत के एक बड़े हिस्से में लोगों के नहाने के लिए बन्द बाथरूम और साफ़ पानी की कोई सुविधा नहीं है। इनमें से औरतों को सबसे अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। औरतों को नहाने के लिए निजी और सुरक्षित जगह की ज़रूरत होती है। जहाँ वह अपनी ठीक तरह से सफ़ाई कर सकें और उनकी निजता भी क़ायम रह सके। लेकिन हमारे देश में बहुत बड़ी संख्या में औरतों को खुले में नहाना पड़ता है। उनको अपने घरों से दूर तालाब या कुओं पर जाकर नहाना पड़ता है, जहाँ कोई चारदीवारी या पर्दा नहीं होता। उनके पास नहाने के लिए समय भी बहुत कम होता है और कपड़े पहनकर नहाना पड़ता है जिससे वह अच्छी तरह अपने शरीर की सफ़ाई भी नहीं कर पाती। इससे समझा जा सकता है कि इन औरतों को कितनी शारीरिक बीमारियों और मानसिक दबाव झेलना पड़ता होगा।

झारखण्ड के एक ज़िले में हुए सर्वेक्षण के अनुसार 29 में से 3 औरतें ही बन्द जगह पर नहाती हैं, जहाँ दीवारों

पर छत हो। ज़्यादातर औरतें तालाब में नहाने जाती हैं जो उनके घर से एक किलोमीटर तक दूर थे। इनमें से 75% औरतें तालाब में नहाने जाती हैं और 6% औरतें घरों के नज़दीक बने कुएँ पर नहाती हैं जो कि बन्द जगह पर नहीं हैं। औरतों ने बताया कि मासिक चक्र के दौरान भी वे कपड़े पहनकर नहाती हैं और गन्दे कपड़े उसी तालाब में धोती हैं। यह गन्दा पानी उसी तालाब में जाता है जिस पानी से वे नहाती हैं। इनमें से 3.4% औरतें ही नैपकिन का इस्तेमाल कर पाती हैं, जिसे वे इस्तेमाल के बाद उसी तालाब या कुएँ में फेंक देती हैं जहाँ वे नहाती हैं। इस गन्दे पानी से नहाने पर कपड़े पहनकर नहाते समय ठीक तरह से शरीर की सफ़ाई न कर पाने के कारण उन्हें कई तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं। औरतों को आदमियों से अधिक बीमारियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन परिवार के अन्य खर्चों के बोझ के कारण वे दवा-इलाज भी नहीं करवा पाती हैं।

ये हालात भारत के एक बहुत बड़े हिस्से के हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के अलावा शहरों में भी मज़दूरों के लिए जो किराये के कमरे बने होते हैं, वहाँ बाथरूम और

रसोई जैसी कोई सुविधा नहीं होती है। 20-25 कमरों के पीछे एक लैटरिन-बाथरूम और एक हैण्डपम्प होता है। दिल्ली हो या लुधियाना या अन्य कोई शहर सभी जगह यही हालात हैं।

एक बहुत चिन्ताजनक बात यह है कि बन्द बाथरूम की ज़रूरत का मुद्दा कभी चर्चा का विषय नहीं बनता। जब लोगों के साथ इस बारे में बात होती है तो उनका कहना होता है कि भले ही नहाने के लिए बन्द जगह की ज़रूरत होती है, लेकिन हमारे पास इस पर खर्च करने के लिए पैसे नहीं हैं। इससे अधिक महत्वपूर्ण ज़रूरतें भी हैं जिन्हें पूरा करना पहल के आधार पर ज़रूरी है। पेट भरने, तन ढँकने और सिर पर छत की खातिर जद्दोजहद के बीच किसी और ज़रूरत की तरफ़ ध्यान देने का न समय रह जाता है और न पैसा। बुनियादी ज़रूरतें पूरा करने से असमर्थ लोगों के लिए साफ़-सफ़ाई रखना असम्भव है। लेकिन प्रश्न यह पैदा होता है कि आखिर ये सब कब तक चलता रहेगा? इस पर सोचना तो होगा ही और इस परिस्थिति को बदलना भी होगा।

• बलजीत

किसकी सेवा में जुटे हैं प्रधान सेवक महोदय!

हाल की दो खबरों पर गौर करें:

1. खास तौर पर अडानी पॉवर के लिए नियम बदल कर उसे उन 500 करोड़ रुपये का कस्टम ड्यूटी रिफंड दिया जा रहा है जो उसने जमा ही नहीं की थी। ऐसे समझिये कि बिना इनकम टैक्स दिए ही रिफंड मिल जाये! विस्तार से समझना हो तो EPW पत्रिका की रिपोर्ट देखिये।

2. वोडाफ़ोन पर ब्याज़/पेनाल्टी समेत 30 हजार करोड़ का इनकम टैक्स बकाया है। 2014 तक उसके वकील अरुण जेटली होते थे, सुप्रीम कोर्ट से फैसला भी करा लिया था कि टैक्स बनता ही नहीं। मगर मामला खत्म नहीं हो पाया था क्योंकि प्रणब मुखर्जी के

समय में पिछली तारीख से कानून बदल दिया गया था। कंपनी फिर नीदरलैंड के एक मध्यस्थता पंचाट में चली गई। पहले जेटली ने बड़ा 'नैतिक' फैसला किया कि वह इस मामले की फ़ाइल नहीं देखेंगे क्योंकि वोडाफ़ोन के वकील रह चुके हैं। पर इस बीच में मामला किसी वजह से गड़बड़ हो गया - कंपनी को लगा कि इस मध्यस्थता पंचाट में गोटी ठीक नहीं बैठी और फैसला पूरी तरह उसके हक़ में नहीं जायेगा। तो उसने लंदन के मध्यस्थता पंचाट में एक नया मामला शुरू करने को कहा। अब जेटली से पूछें बिना किसी अधिकारी ने सिफ़ारिश की कि इस मध्यस्थता पंचाट में शामिल ही न हुआ जाये। अब

जेटली जी ने कंपनी के लिए अपनी वफ़ादारी निभाते हुए मोदी जी को पत्र लिखा है कि लंदन के मध्यस्थता पंचाट में शामिल हुआ जाये और अपनी तरफ से किसी सलीम मूमन नाम के वकील की भी सिफ़ारिश की है। आखिर अपने क्लाइंट को नुकसान कैसे होने दें!

क्या अब भी कोई शक़ है कि प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठा व्यक्ति जो अपने को जनता का प्रधान सेवक और 'मज़दूर नं. एक' बताता रहता है, वास्तव में किन लोगों का सेवक है? बाकी, मज़दूर, किसान, छात्र आदि अपनी माँगों पर आन्दोलन करते रहें, उनके लिए सरकार के पास पैसे नहीं हैं।

- मुकेश

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'!

इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" - लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
ईमेल से भेजने का पता: bigulakhbar@gmail.com

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टियों के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुःअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul

खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200

पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकखर्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:

फ़ोन: 0522-4108495, 8853093555, 9721481546

ईमेल: bigulakhbar@gmail.com

फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन: 8853093555

दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928

ईमेल : bigulakhbar@gmail.com

मूल्य : एक प्रति - रु. 5/-

वार्षिक - रु. 70/- (डाक खर्च सहित)
आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

आइसिन ऑटोमोटिव, रोहतक के मज़दूरों का जुझारू संघर्ष जारी है जोर है कितना दमन में तेरे, देख लिया है, देखेंगे!

विगत 3 मई से जारी आइसिन कम्पनी के मज़दूरों के संघर्ष को यह रिपोर्ट लिखे जाने तक 45 दिन हो चुके हैं। किन्तु कम्पनी प्रबन्धन, श्रम विभाग, स्थानीय प्रशासन से लेकर हरियाणा की भाजपा सरकार के कानों पर जूँ तक नहीं रेंग रही है। अपनी जायज माँगों के साथ संघर्षरत आइसिन मज़दूरों का जुझारू संघर्ष आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में तमाम तरह के दमन, जेल, केस-मुकदमों के बाद भी जारी है। ज्ञात हो आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा प्राइवेट लिमिटेड नामक कम्पनी जोकि एक जापानी मालिकाने वाली कम्पनी है, आईएमटी रोहतक,

गाड़कर धरने पर बैठ गये। मैनेजमेण्ट ने कोर्ट से पहले ही 7 नेतृत्वकारी श्रमिकों के लिए 400 मीटर का 'स्टे ऑर्डर' ले लिया था जिसके कारण उन्हें आईएमटी के मुख्य द्वार पर ही बैठना पड़ा।

श्रमिकों के धरने पर बैठते ही श्रम विभाग, स्थानीय प्रशासन और सरकार तक के नुमाइन्दे हरकत में आ गये। सभी के सभी कम्पनी मैनेजमेण्ट की भाषा बोलने लगे। मज़दूरों को तरह-तरह से डराने-धमकाने और दबाने के प्रयास किये जाने लगे। अपने जायज अधिकारों के लिए धरनारत श्रमिकों के लिए बार-बार गुहार लगाये जाने के बाद भी प्रशासन की तरफ से मई-जून की

किन्तु किसी के भी कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। 30 मई को श्रमिकों ने कम्पनी गेट पर आमरण अनशन की शुरुआत भी की जो कि 2 दिन ही चलने दिया गया क्योंकि अगले ही दिन यानी 31 मई को कम्पनी को कोर्ट से सभी श्रमिकों को चहारदीवारी से निश्चित दूरी पर दूर रखने का स्टे ऑर्डर मिल गया। पिछले 29 दिन तक प्रबन्धन द्वारा की जा रही ज्यादतियों के प्रति अन्धा-बहरा बना बैठा प्रशासन तुरन्त हरकत में आ गया। 29वें दिन पुलिस द्वारा मारपीट और लाठीचार्ज करके परिवारजनों, मज़दूर कार्यकर्ताओं समेत 425 को गिरफ्तार कर लिया गया। सभी को संगीन धाराएँ

मानने को क़तई तैयार नहीं हैं।

आन्दोलन में शुरू से ही बिगुल मज़दूर दस्ता व ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन के साथी लगातार मौजूद हैं। हर क़दम पर न केवल मज़दूरों के संघर्ष में भागीदारी जारी है, बल्कि सकर्मक हस्तक्षेप भी हो रहा है। आगे हम विस्तार से आइसिन के मज़दूरों के आन्दोलन में मौजूद विभिन्न प्रवृत्तियों और रुझानों पर विस्तारपूर्वक अपनी बात रखेंगे। यदि ऑटोमोबाइल उद्योग के व्यापक परिप्रेक्ष्य में आइसिन मज़दूरों के संघर्ष को देखा जाये तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि मज़दूरों की व्यापक सेक्टरगत

ऑटोमोबाइल सेक्टर में काम करने वाला हरेक कामगार समझता है कि अत्यधिक वर्कलोड, स्थाई, ट्रेनी, कैजुअल, ठेका के नाम पर मज़दूरों का बँटवारा और शोषण, श्रम क़ानूनों का खुला उल्लंघन, मज़दूरों को निचोड़ डालने की मालिक की चाहत पूरे ऑटोमोबाइल सेक्टर की तमाम कम्पनियों की आम परिघटना बन चुकी है। तीसरा उदारीकरण-निजीकरण के मौजूदा दौर में श्रम विभाग, स्थानीय प्रशासन से लेकर सरकार तक मालिक और पूँजीपति वर्ग के सामने दण्डवत खड़े रहते हैं। इन्हीं सब कारणों से व्यापक सेक्टरगत एकता के बिना आज काम नहीं चल सकता। पहले जहाँ एक



हरियाणा में स्थित है। यह कम्पनी ऑटोमोबाइल सेक्टर की एक वेण्डर कम्पनी है जोकि खासतौर पर मारुती, होण्डा, टोयोटा इत्यादि कम्पनियों हेतु ऑटो पार्ट जैसेकि डोर लोक, इनडोर-आउटडोर हैण्डल इत्यादि बनाने का काम करती है। अत्यधिक कार्यभार (वर्कलोड), बेहद कम मज़दूरी, मैनेजमेण्ट द्वारा गाली-गलौच और बुरा व्यवहार, श्रम क़ानूनों का हनन, स्त्री श्रमिकों के साथ छेड़छाड़ की घटनाएँ आदि वे मुद्दे थे, जिन्होंने आइसिन के मज़दूरों को एकजुट होने की ज़रूरत का अहसास कराया। मज़दूरों ने धीरे-धीरे आपसी संवाद स्थापित किया और ट्रेड यूनियन एक्ट 1926 के तहत श्रम विभाग में यूनियन पंजीकरण की फ़ाइल लगा दी। थोड़ा ही समय हुआ था कि खुद श्रम विभाग के द्वारा मैनेजमेण्ट के कानों तक यह ख़बर पहुँचाई गयी और बड़े ही शांतिराना अन्दाज़ में मैनेजमेण्ट श्रम विभाग से साँठ-गाँठ करके पंजीकरण फ़ाइल को रद्द कराने में जुट गयी। इसी प्रक्रिया में 3 मई को कम्पनी ने 20 श्रमिकों को निकालने और अनुशासन के नाम पर एक अण्डरटेकिंग फ़ॉर्म नोटिस बोर्ड पर चस्पा कर दिया। यही नहीं उस दिन कम्पनी ने श्रमिकों के लिए हर रोज़ जाने वाली गाड़ी तक नहीं भेजी। जैसे-तैसे श्रमिक कम्पनी गेट तक पहुँचे तो उन्हें कम्पनी के तानाशाहीपूर्ण रवैये का पता चला। कम्पनी में कार्यरत स्थाई, ट्रेनी और कैजुअल समेत करीब 700 श्रमिकों ने कम्पनी के इस नाजायज़ रुख को मानने से इंकार कर दिया और कम्पनी गेट पर ही अपने संघर्ष का खूँटा

तपती गर्मी में भी टेण्ट-तम्बू लगाने तक की अनुमति नहीं दी गयी, इतना ही नहीं महिला श्रमिकों तक के लिए मोबाइल शौचालय का प्रबन्ध नहीं किया गया, जबकि धरनास्थल के एकदम नज़दीक पुलिस और कम्पनी बाउंसरों के लिए कूलर की ठण्डी हवा के साथ टेण्ट तुरन्त लग गया तथा कम्पनी के अन्दर मोबाइल शौचालय भी नगर पालिका के द्वारा तुरन्त खड़े कर दिये गये।

आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा मज़दूर यूनियन के प्रधान जसबीर सिंह महासचिव अनिल और अन्य नेतृत्वकारी साथियों -- उमेश, गोपाल, रणजीत, कैलाश, सोनू प्रजापति, मनजीत तथा अन्य मज़दूर साथियों ने बताया कि श्रम विभाग की मध्यस्थता में प्रबन्धन से बार-बार श्रमिक पक्ष की वार्ता हुई, लेकिन समझौते की बजाय श्रम विभाग और कम्पनी प्रबन्धन के द्वारा गुमराह ही किया जाता रहा। संघर्ष के दौरान इस बात का भली-भाँति आभास हो गया है कि देश का श्रम विभाग, प्रशासन और सरकार तक एक जापानी कम्पनी प्रबन्धन के अधीन काम कर रहे हैं। स्थानीय विधायक, सांसद से लेकर मुख्यमन्त्री, राज्यपाल, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति आदि तमाम नेताओं-मन्त्रियों को लिखने, गुहार लगाने के बाद भी कहीं भी सुनवाई नहीं हुई। जैसे कि यहाँ पर देश के संविधान की नहीं, बल्कि जापानी मालिक की अधिक चलती हो। कहीं से भी न्याय नहीं मिलने के कारण श्रमिकों ने दो बार सांकेतिक भूख हड़ताल की और तीन दिन तक क्रमिक भूख हड़ताल भी की,

लगाकर रोहतक की सुनारिया जेल व झज्जर जेल में टूँस दिया गया। जेल जाने वालों में बिगुल मज़दूर दस्ता तथा ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन के मज़दूर कार्यकर्ता भी शामिल थे। जेल जाने के बाद भी मज़दूरों ने अपना हौसला नहीं खोया तथा बाहर आकर संघर्ष को और भी तेज़ करने का ऐलान किया। श्रमिकों के जेल में रहते हुए रोहतक शहर और राजधानी दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर विभिन्न जन संगठनों ने विरोध प्रदर्शन किये। जनदबाव के कारण सभी 425 गिरफ्तारों को निजी मुचलके पर जमानत पर रिहा करना पड़ा। 6 जून तक सभी श्रमिक जेल से बाहर आ गये और अगले ही दिन रोहतक शहर में विभिन्न जन संगठनों के साथ मिलकर विशाल प्रदर्शन का आयोजन किया गया। 7 जून को ही प्रदेश-भर में आइसिन के मज़दूरों के समर्थन में हरियाणा राज्य-भर के जनसंगठनों ने विरोध प्रदर्शन किये। 9 जून को आइसिन के श्रमिक पुनः आईएमटी पहुँचे तथा कोर्ट द्वारा दिये गये स्टे के कारण कम्पनी से थोड़ी दूरी पर आईएमटी, रोहतक के मुख्य द्वार पर बैठ गये। यह रिपोर्ट लिखे जाने तक आइसिन के मज़दूरों का संघर्ष अनथक रूप से अब भी जारी है। तमाम कठिनाइयों का मुक़ाबला मज़दूर एकजुट होकर कर रहे हैं। मैनेजमेण्ट के तमाम हथकण्डे, पुलिस दमन, प्रशासन की बेरुखी मज़दूरों के हौसले का बाल भी बाँका नहीं कर पाये हैं। कम्पनी मैनेजमेण्ट अब भी अपने अडियल रुख पर क़ायम है तथा समझौते की टेबिल पर नहीं आ रही है, किन्तु मज़दूर भी हार

एकता के बग़ैर एक कम्पनी/फ़ैक्टरी के स्तर पर मज़दूरों के द्वारा अपने संघर्ष में जीत हासिल करना खासा मुश्किल काम है। फ़ैक्टरी के स्तर पर व्यापक एकजुटता के बावजूद भी मालिक वर्ग को आसानी से नहीं झुकाया जा सकता। इसका एक प्रमुख कारण तो यही है कि पूँजीपति वर्ग ने आज उत्पादन को एक फ़ैक्टरी में करने कि बजाय बिखरा दिया है। एक ही प्रकार का माल विभिन्न यानी एक से ज़्यादा वेण्डर कम्पनियों उपलब्ध करा देती हैं या फिर एक ही मालिक की कई-कई वेण्डर कम्पनियाँ अलग-अलग जगह पर चलती हैं। जैसेकि आइसिन कम्पनी ही वैश्विक स्तर पर काम करती है तथा पूरी दुनिया में 190 से भी ज़्यादा कम्पनियाँ चलाती है। इसी कारण से मज़दूर अपने संघर्ष के दौरान मालिक के मुनाफ़े के चक्के को जाम नहीं कर पाते। दूसरा मालिक वर्ग आपस में अपने "बुरे वक्त्र" में एक-दूसरे का साथ भी दे देते हैं जैसे आइसिन के मालिक और कम्पनी की मैनेजमेण्ट का साथ मारुती और मिण्डा कम्पनी की मैनेजमेण्ट समेत अन्यो ने मदद करके दिया। किन्तु मज़दूर वर्ग एक-दूसरे के संघर्ष में मुस्तैदी के साथ मदद नहीं कर पा रहे हैं या कहिए इस स्तर तक अभी वर्ग चेतना का विकास नहीं हो सका है। क्योंकि हीरो, मारुती, होण्डा, अस्ति, श्रीराम पिस्टन, ओमैक्स, मार्क एक्झोस्त आदि-आदि तमाम कम्पनियों के संघर्षों के माँगपत्रों की विभिन्न माँगें साझा होने के बावजूद इनका संघर्ष साझा नहीं हो सका। बेशक इन कम्पनियों के संघर्ष अलग-अलग समय में उठे हों, परन्तु यह बात आज

ही छत के नीचे पूरा उत्पाद बनता था तथा 'असेम्बलिंग' भी वहीं होती थी, वहीं आज पूरा उत्पाद एक जगह बनने की बजाय टुकड़ों-टुकड़ों में बनता है तथा 'असेम्बलिंग' भी कहीं और होती है। इसीलिए आज सेक्टरगत यूनियन हमारे संघर्ष को ज़्यादा कारगर ढंग से लड़ पायेंगी तथा इसका मतलब यह भी क़तई नहीं है कि हम फ़ैक्टरी के आधार पर यूनियन नहीं बनायें, बल्कि ज़रूर बनायें, बल्कि दोनों ही प्रक्रियाओं पर ही साथ-साथ ध्यान दें, क्योंकि आगे चलकर सेक्टरगत यूनियन हमारे स्थानीय संघर्षों में मददगार ही साबित होंगी। फ़ैक्टरीगत यूनियनों के साथ-साथ गुडगाँव, मानेसर, धारूहेड़ा, बावल, खुशखेड़ा, भिवाड़ी, टपुकड़ा, अलवर से लेकर बहादुरगढ़, रोहतक आदि तक की ऑटोमोबाइल की पूरी पट्टी की एक सेक्टरगत व इलाक़ाई यूनियनों को खड़ा कराना आज वक्त्र की ज़रूरत है। आइसिन के मज़दूरों का आन्दोलन अभी चल ही रहा है तो उनके संघर्ष का परिणाम तो अभी आना बाक़ी है किन्तु इतना अवश्य है कि आइसिन के मज़दूरों ने 45 दिन के अपने संघर्ष में जाति-धर्म की बेड़ियों को तोड़कर मज़दूर वर्ग की वर्गीय एकजुटता का परिचय तो दिया ही है साथ ही स्थाई, ट्रेनी और कैजुअल के बँटवारे को ठोकर मारकर डेढ़ महीने तक साझा संघर्ष चलाकर अन्य मज़दूर भाइयों के सामने एक मिसाल ज़रूर क़ायम की है।

(पेज 5 पर जारी)

ज़हर उगल रहे बायो वेस्ट प्लांट को बन्द कराने नगरनिगम के दफ़्तर तक निकाली रैली

15 जून 2017, गुरुवार को नौजवान भारत सभा और 'बायो वेस्ट ट्रीटमेंट प्लांट हटाओ संघर्ष समिति' ने नगर निगम के दफ़्तर तक रैली निकाली और कॉर्पोरेटर को हस्ताक्षर सहित कागज़ और ज्ञापन सौंपा। ज्ञात हो पिछले महीने की 10 तारीख से नौजवान भारत सभा के साथी घाटकोपर मानखुर्द लिंक रोड पर स्थित बायो वेस्ट ट्रीटमेंट प्लांट (एसएमएस कम्पनी) को बन्द कराने के लिए गली-गली नुककड़-चौराहों पर अभियान चला रहे थे।

एसएमएस कम्पनी में मुम्बई शहर के सारे अस्पतालों का कचरा जलाया जाता है। महाराष्ट्र प्रदूषण नियन्त्रण

विभाग (एमपीसीबी) के 1998 के नियम अनुसार यहाँ पर माइक्रोवेव, चिमनी की हाइट, मेडिकल कचरे की छँटाई होनी चाहिए। पर जब मुम्बई उच्च न्यायालय के कमेटी के सदस्य डॉ सन्दीप राणे ने इस प्लांट का आकस्मिक निरीक्षण किया तो जो नज़ारा उन्होंने देखा, वह दिल दहला देने वाला था। यहाँ पर खून से सनी पट्टियाँ, सिरिज, सेलाइन की बोतल इन सबको बिना किसी प्रक्रिया को पूरा किये सीधे भट्टी में झोंक दिया जाता है। जिसके चलते वातावरण काफ़ी प्रदूषित होता है। गोवण्डी मानखुर्द में 10 लाख से ज़्यादा लोग रहते हैं, जो इस प्लांट के निकल रहे धुएँ के कारण टीबी, अस्थमा

और साँस सम्बन्धी बीमारियाँ की चपेट में आ रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार यहाँ दिन में 12 टन कचरा जलाया जाता है, दिन-भर में 50 बार गाड़ियाँ आती हैं और मुम्बई के अस्पताल, क्लिनिक पैथोलॉजी की 12000 यूनिटों से आया हुआ कचरा यहाँ जलाया जाता है। जिसके चलते यह ज़हर यहाँ पर बसे इलाक़ों जैसे साठे नगर, ज़ाकिर हुसैन नगर, मण्डला, बैगवादी, टाटा नगर, लल्लूभाई कम्पाउण्ड की ज़िन्दगी का एक आम हिस्सा बन गया है।

दरअसल मुम्बई के अन्दर भी दो मुम्बई बसती हैं। एक तरफ़ तो कोलाबा अँधेरी जैसे उच्च वर्ग के इलाक़े हैं।

जिनको चमकाने के लिए गोवण्डी मानखुर्द जैसे इलाक़ों का मजदूर-मेहनतकश वर्ग अपनी हड्डियाँ गलाता है। पर दूसरी तरफ़ खुद एक नारकीय ज़िन्दगी जीने को मजबूर होता है। मुम्बई के मेट्रो फ़ेज 3 के लिए कोलाबा, अँधेरी में काटे जा रहे पेड़ों की ख़बर तो बनती है पर 2009 से गोवण्डी मानखुर्द के निवासियों की साँसों में घुल रहे ज़हर की सुध लेने वाला कोई नहीं है। गोवण्डी में ही देओनार डम्पिंग ज़ोन भी मौजूद था जहाँ हर दिन 7,500 टन कूड़ा डाला जाता था। मिडिल क्लास कॉलोनी को चकाचक रखने के लिए मजदूर रिहाइशी इलाक़ों को कूड़ाघर बनाके रखा जाता

है। इसलिए आज पर्यावरण के लिए भी मजदूर-मेहनतकश नौजवानों को आगे आना होगा। इसी के तहत नौभास के साथियों ने आज पुरे इलाक़े में रैली निकाली, पर्चे बाँटे और एक महीने से चल रहे अभियान से लोगों के 3500 हस्ताक्षर कराकर नगरसेवक को ज्ञापन सौंपा गया। आगे नौजवानों और इलाक़े के लोगों ने इस अभियान को और लोगों तक फैलाने और इलाक़े में वृक्षारोपण का कार्यक्रम अपने हाथ में लिया।

हरियाणा में यूनियन बनाने की सज़ा - मुक़द्दमा और जेल!

पीयूडीआर आइसीन ऑटोमोटिव हरियाणा प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के संघर्षरत मजदूरों के खिलाफ़ दर्ज मुक़द्दमे एवं गिरफ़्तारी की निन्दा करता है। पिछले कुछ महीनों से मजदूर अपनी यूनियन पंजीकृत करवाने के लिए और मैनेजमेण्ट से अपने काम की परिस्थितियों से सम्बन्धित माँगों को लेकर संघर्षरत हैं। 31 मई 2017 को कम्पनी के गेट पर बीते कई दिनों से शान्तिपूर्वक प्रदर्शन कर रहे मजदूरों पर पुलिस ने मैनेजमेण्ट की शिकायत पर पहले लाठी चार्ज किया, फिर उन्हें हिरासत में ले लिया। इन सभी के खिलाफ़ रोहतक के साँपला थाने में एफ़आईआर दर्ज किया गया है जिनमें यूनियन लीडरों को मुख्य आरोपी नामित किया गया है।

आइसीन ऑटोमोटिव हरियाणा प्राइवेट लिमिटेड एक जापानी कम्पनी है जो 2011 से आईएमटी रोहतक में स्थित अपनी फ़ैक्टरी में टोयोटा, मारुती, हौण्डा आदि नामी गाड़ी बनाने वाली कम्पनियों के लिए 'डोर लॉक' एवं 'इनसाइड-आउटसाइड हैण्डल' जैसे पार्ट्स बनाती है। इस फ़ैक्टरी में करीब 450 मजदूर काम करते हैं। इन्हें करीब 8000 से 10000 रुपये का मासिक वेतन मिलता है। आइसीन ऑटोमोटिव हरियाणा मजदूर यूनियन द्वारा जारी किये गये एक पर्चे के अनुसार, काम के दौरान मजदूरों को पानी व पेशाब के लिए मना किया जाता है, उनके साथ गाली-गलौच की जाती है और महिला मजदूरों के

साथ भी दुर्व्यवहार किया जाता है।

कम वेतन और काम की बुरी परिस्थितियों के चलते मजदूरों ने फ़ैसला किया कि वे अपनी यूनियन को पंजीकृत करेंगे और अपनी माँगों को मैनेजमेण्ट के सामने रखेंगे। 20 मार्च 2017 को उन्होंने यूनियन के पंजीकरण के लिए श्रम विभाग में अर्जी दी।

26 मार्च को मजदूरों ने अपना माँगपत्र कम्पनी को दिया। पर न तो कम्पनी मैनेजमेण्ट और न ही प्रशासन की तरफ़ से मजदूरों की कोई ख़बर ली गयी या सुनवाई की गयी। उल्टा 25 अप्रैल को कम्पनी ने रोहतक सिविल कोर्ट में मुक़द्दमा दाखिल कर दिया और यूनियन लीडरों और सदस्यों को फ़ैक्टरी गेट के अन्दर आने से रोकने और फ़ैक्टरी परिसर के 1000 मीटर तक कोई धरना या शामियाना लगाने से रोकने के निर्देश माँगे। 26 अप्रैल को सिविल जज ने अन्तरिम आदेश दिये कि फ़ैक्टरी परिसर के अन्दर और फ़ैक्टरी गेट से 400 मीटर दूरी तक मजदूर धरने पर भी नहीं बैठ सकते। 3 मई को कम्पनी ने मोर्चे की अगुवाई कर रहे 20 मजदूरों को काम से निकाल दिया। बाक़ी मजदूरों ने जब इसका विरोध किया तो कम्पनी ने उन्हें एक "अण्डरटेकिंग" थमा दी और यह शर्त रख दी कि इस पर हस्ताक्षर करके ही वे काम पर वापस आ सकते हैं। कम्पनी के मनमाने बर्ताव के विरोध में मजदूर 3 मई से कम्पनी के गेट के बाहर बैठकर शान्तिपूर्वक प्रदर्शन कर रहे हैं।

इस बीच 12 मई को मजदूरों की यूनियन पंजीकरण की अर्जी खारिज हो गयी। यूनियन लीडरों का कहना है की अर्जी को बेबुनियाद कारणों से खारिज किया गया है। जहाँ कारण बताया गया है कि यूनियन के चार सदस्य कानूनी परिभाषा में अनुसार "मजदूर" नहीं हैं, वहीं लीडरों का कहना है कि ये बात उनकी वेतन रसीद से झूठ साबित होती है। जहाँ कारण बताया गया है कि यूनियन के कुल सदस्य कम्पनी की कुल मजदूर संख्या के 10 प्रतिशत से भी कम है, वहीं लीडरों का कहना है कि कम्पनी ने यह संख्या षड्यन्त्र के तहत बढ़ाकर बताई है।

इसके पश्चात 30 मई को, चल रहे सिविल मुक़द्दमे में जज ने एक और निर्देश दिया कि यूनियन के सदस्य फ़ैक्टरी परिसर में न तो घुसेंगे, न उसके 200 मीटर के दायरे में कोई धरना करेंगे, न नारे लगायेंगे, न घेराव करेंगे, न रास्ता रोकेंगे। कम्पनी द्वारा दिये गये तथ्यों (जैसे मजदूरों द्वारा फ़ैक्टरी सम्पत्ति को नुक़सान पहुँचाया गया और उत्पादन धीमा किया गया) की पड़ताल किये बिना और संविधान के अनुच्छेद 19 में दिये गये शान्तिपूर्वक प्रदर्शन करने के बुनियादी हक़ों को नकारते हुए उपरलिखित फ़ैसला कम्पनी के पक्ष में सुना दिया गया। 31 मई को सुबह से ही मजदूर अपने परिवारजनों के साथ अपनी अनसुनी माँगों को उठाने के लिए फ़ैक्टरी के बाहर धरने पर बैठे थे। मैनेजमेण्ट

की शिकायत पर हरियाणा पुलिस वहाँ एकत्रित हो गयी, प्रदर्शनकारियों पर लाठीचार्ज किया, उन्हें हिरासत में ले लिया और उन पर साँपला थाने में मुक़द्दमा दर्ज कर दिया। एफ़आईआर के अनुसार मजदूरों पर आरोप है कि वे गैर-कानूनी रूप से ख़तरनाक हथियार (यानी झण्डे!) लेकर एकत्रित हुए, रास्ता रोका, कम्पनी के गेट को जाम कर दिया, कम्पनी के स्टाफ़ को धमकी दी और आम चोट पहुँचाई।

425 लोगों को, जिनमें मजदूर, उनके परिवारजन और कुछ कार्यकर्ता भी शामिल थे, रोहतक के सुनारियन जेल में बन्द कर दिया और मजिस्ट्रेट को अर्जी देने पर ही 6 जून तक सभी को बेल पर छोड़ा गया।

मजदूरों के काम की परिस्थितियों से सम्बन्धित माँगों को लेकर कम्पनी प्रबन्धन और श्रम विभाग की उदासीनता बीते माह में उनके रवैये से स्पष्ट है। और मजदूरों के यूनियन बनाने के बुनियादी हक़ के संघर्ष को विफल बनाने में पुलिस और न्यायपालिका भी अपना सम्पूर्ण योगदान दे रही है। एक तरफ़ मजदूरों को संगठित होने से रोकने के लिए प्रबन्धन ने 20 मजदूरों को सीधा निष्कासित कर दिया और बाक़ियों से अण्डरटेकिंग देने की शर्त रख दी। उनकी माँगों के बारे में बातचीत की कोई पहल नहीं की, बल्कि गेट पर बाउंसरों को तैनात किया गया। सिविल कोर्ट में यूनियन के सदस्यों को बाहर निकालने के लिए

मुक़द्दमा कर दिया और फिर 31 मई को उनके खिलाफ़ पुलिस में शिकायत भी दर्ज करायी। दूसरी तरफ़ प्रशासन, ख़ास तौर से श्रम विभाग, की तरफ़ से मजदूरों की माँगों के लिए प्रबन्धन पर कोई दबाव नहीं बनाया गया है। प्रबन्धन का मनोबल बढ़ाते हुए पुलिस ने मजदूरों पर लाठीचार्ज किया, उन पर मुक़द्दमा दर्ज किया और कई दिनों तक गिरफ़्तार करके रखा। साथ ही सिविल कोर्ट ने मजदूरों को फ़ैक्टरी के आस-पास प्रदर्शन करने से भी रोक दिया है।

हरियाणा में आइसीन, हौण्डा, मारुती, ओमैक्स आदि कम्पनियों के संघर्षों से स्पष्ट पता चलता है कि आज भी मजदूरों के लिए संविधान के अनुच्छेद 19 में दिये गये संगठित होने के मूलभूत अधिकार को हासिल करना कितना मुश्किल है। ऐसे में पीयूडीआर माँग करता है कि -

1. मजदूरों पर लगाये गये झूठे मुक़द्दमे वापस लिए जायें।
2. मजदूरों की यूनियन को तुरन्त पंजीकृत किया जाये।
3. श्रम विभाग, मैनेजमेण्ट से मजदूरों की माँगें मनवाने के लिए उचित कार्यवाही करे।

अनुष्का सिंह, सीजो जॉय

सचिव, पीयूडीआर

10 जून 2017

कयूर के शहीदों की गाथा...

(पेज 15 से आगे)

वार्डन संकेत देता है। फन्दे उनकी गरदन को और उनकी आवाज़ को कस लेते हैं। तख़्ते हटा दिये जाते हैं। फन्दे और कस जाते हैं।

"तब तक लटकाया जाये जब तक मर नहीं जाते।"

शवों से कोई आवाज़ नहीं आती। पर, कोठरियों से "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद" का उद्घोष सुनायी पड़ता है।

सुबह हो चुकी थी। किसी भी समय सूरज उग सकता था। पर उग

क्यों नहीं रहा?

"उनके लोग शवों के लिए आये हैं।" वार्डन फुसफुसाता है।

"उन्हें कैसे पता चला।"

"पता नहीं। पर आये हैं।"

"वे करेंगे क्या शवों का? उनको जुलूस में ले जायेंगे?"

"उनका कहना है कि उन्हें उनके गाँव ले जायेंगे।"

"असम्भवा।" कलक्टर ने फ़ैसला सुनाया। "उन्हें शव मत सौंपो। यहीं दफ़न कर दो।"

...जेल से बाहर, शहर जाग चुका

है। शोक और विजय के गीत शहर में यह खबर फैला देते हैं कि कयूर के नायक शहीद हो चुके हैं।

ज़मींदार नम्बियार की नींद उड़ चुकी थी। वह कुछ ऐसा करना चाहता था जो अरसे से उसके मन में था। इसलिए शाम को वह स्कूल तक गया। उसके साथ कुल्हाड़े लिये उसके नौकर थे।

मास्टर जी के लगाये आम के दोनों पेड़ फलों से लदे हुए थे, जैसे पच्चीस-पच्चीस साल के दो नौजवान हों।

"काटके गिरा दो इन्हें!" नम्बियार

चिल्लाया। "काटके गिरा दो।"

पेड़ में चार आदमियों की ताक़त थी। ज़मींदार के नौकर कुल्हाड़ा चलाते-चलाते थक गये। पसीने-पसीने हो गये।

बाद में जब अँधेरा हो रहा था कन्नानूर से खबर लेकर कोई आया...

...तपती हुई धरती ठण्डी पड़ गयी। हवा थम गयी और पेड़ चुप हो गये।

उस रात कयूर में कोई रोशनी नहीं हुई। लोग अँधेरे में बैठे रोते रहे।

जानकी बाहर आँगन में अण्णू कुट्टी के साथ थी। लड़का लगातार सिसक

रहा था। जानकी से चुप नहीं हो रहा था। उसने रात के आकाश की ओर देखा जहाँ लाखों सितारे चमक रहे थे। पश्चिम में उसे लगा कि चार सितारे पहले से कहीं अधिक चमक रहे हैं।

जानकी ने पहले सितारे की ओर इंगित करके कहा, "अण्णू कुट्टी। देखा तेरे पिता वहाँ हैं। तू रो मत। उन्हें अच्छा नहीं लगेगा।"

वह रात बड़ी लम्बी थी।

क्रमशः अँधेरा छँटा और सुबह हुई।

अधिक अनाज वाले देश में बच्चे भूख से क्यों मर रहे हैं?

आज से लाखों वर्ष पहले मानव के पूर्वज वृक्षों से उतरके क्रबीलों के समाज में संगठित होकर रहने लगे। इस युग के दौरान कितने ही बच्चे, औरतें और मर्द ठण्ड, बीमारी, भूख या जानवरों द्वारा मरते रहे। प्रकृति के साथ इस संघर्ष से सीखते हुए मानव ने अपनी प्रकृति की रचना शुरू की। उत्पादन के साधन कुछ विकसित होने के साथ ही उत्पादन में वृद्धि हुई तो इसके साथ ही निजी सम्पत्ति पैदा होने लगी और कुछ लोगों ने इस अतिरिक्त उत्पादन को हड़पना शुरू कर दिया। इस तरह वर्गीय समाज अस्तित्व में आया। मानवीय सभ्यता ने क्रमवार गुलामदारी, जमींदारी में से निकलते हुए पूँजीवाद तक का सफ़र चुना। भले गुलामदारी और जमींदारी भी वर्गीय समाज थे, लेकिन इन समाजों में विज्ञान और तकनीक के पिछड़े विकास के कारण सभी मानवीय ज़रूरतें पूरा हो पाना सम्भव नहीं था। हुक्मरान वर्गों

द्वारा लूट, दमन के बिना इन समाजों में अकाल, सूखे के द्वारा पैदा हुई भूखमरी और इलाज न होने के कारण बीमारियों के महामारियाँ बनने के साथ लाखों लोग मरते रहे हैं, यानी साधनों की कमी के कारण लोगों की मौतें होती रही हैं।

लेकिन आज का समाज (पूँजीवादी समाज) एक ऐसा समाज है, जहाँ सभी मनुष्यों की भौतिक ज़रूरतें पूरी की जा सकती हैं, यानी आज तकनीक और विज्ञान या समूचे तौर पर मानवीय ज्ञान और क्षमता इतनी विकसित हो गयी है कि आज हर इन्सान को रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य जैसी सुविधाएँ मुहैया की जा सकती हैं। लेकिन विज्ञान, तकनीक के इतने विकास के बावजूद भी मौजूदा समाज कई तरह की त्रासदियों का शिकार है। इन्हीं में से एक त्रासदी है अतिरिक्त अनाज पैदा होने के बावजूद भूख के कारण बच्चों की छोटी आयु में होने वाली मौतें। क्रिकेट की तरह इस

मामले में भी भारत पहली क्रतार में है। भारत में रोजाना 5000 बच्चे भूख और कुपोषण के कारण मर जाते हैं। इसका कारण पूछने पर हुक्मरान इसे गरीबों की आबादी या भगवान की करनी पर छोड़ने की कोशिश करते हैं। लेकिन उनके ये झूठ तर्क के दरबार में एक पल भी नहीं खड़े हो पाते। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक भारत में कुल आबादी की ज़रूरतों से ज़्यादा अनाज पैदा हो रहा है और ये अनाज गोदामों में पड़ा-पड़ा सड़ रहा है, तो भूखमरी, कुपोषण जैसी भयानक बीमारियों का कारण भगवान की मर्जी या आबादी नहीं हो सकता। इसके कारण दस्त जैसी बीमारियाँ, जिनके कारण और इलाज कई दशक पहले ही ढूँढ़े जा चुके हैं, वो भी नहीं हैं।

इसका कारण यह है कि आज का समाज भी एक वर्गीय समाज है। मतलब कुछ लोग उत्पादन के साधनों पर कब्ज़ा किये हुए हैं। बहुसंख्यक आबादी इन

साधनों की मुहताज़ है। साधनों के मालिक हर चीज़ मुनाफ़े के लिए पैदा करते और बेचते हैं। इसी कारण साधनों, सम्पत्ति के ये मालिक बिना मुनाफ़े के एक दाना भी किसी के मुँह में नहीं जाने देते। साधनों की मुहताज़ बहुसंख्यक आबादी को इन सम्पत्ति मालिकों ने इतनी गरीबी में धकेल दिया है कि उसके लिए दो वक्रत के दाने ख़रीदने भी मुश्किल हैं। भले इसी कारण एक ओर यह अनाज गोदामों में सड़ता रहता है और दूसरी ओर हर रोज़ हज़ारों बच्चे भूख से तड़प-तड़प कर मरते रहते हैं। यह आज के मुनाफ़ाखोर समाज का तर्कशास्त्र है। जहाँ अमीर परिवारों के बच्चे के थोड़ी चोट लगने पर पूरा परिवार फिक्रमन्द हो जाता है वहाँ हज़ारों बच्चे प्रतिदिन सिर्फ़ इस कारण भूख, कुपोषण से मर जाते हैं क्योंकि उनके पास पैसे की कमी है।

इस तरह मुनाफ़ाखोरी की यह दौड़ न सिर्फ़ हज़ारों बच्चों का

बेरहमी से क़त्ल कर रही है बल्कि धन कमाने का लालच रखने वालों को भी असंवेदनशील मशीनों में बदलती जाती है जिनके लिए नोटों की गिणती बच्चों की लाशों की गिणती से अधिक महत्व रखती है। ऐसे समाज की चाल चलना, मुनाफ़ा कमाने की इस मशीनी दौड़ में एक पुर्जा बनकर ज़िन्दगी जीना किसी भी संवेदनशील मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। ऐसे समाज के विरुद्ध चलना, निजी सम्पत्ति पर टिके इस मुनाफ़ाखोर समाज को ख़त्म करने के संघर्ष में अपना योगदान डालते हुए जीना ही आज के समय में इंसानों की तरह जीने का एक तरीक़ा है। ऐसा समाज बनाना होगा यहाँ ऐसी त्रासदियों का अन्त किया जा सकता है।

— जसमीत

ख़ूबसूरत चमड़ी का बदसूरत धन्धा

लगातार तीखे होते जा रहे आर्थिक धुवीकरण के कारण जहाँ मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी के दर्द बढ़ते जा रहे हैं, वहाँ औरतों के हालात तो इससे कहीं भयंकर होते जा रहे हैं। क्योंकि जहाँ औरतों की बहुसंख्यक आबादी गरीबी का सन्ताप झेल रही है। इसके साथ-साथ उसे इस मर्द-प्रधान समाज में औरत होने का सन्ताप भी भोगना पड़ रहा है। यानी वे गरीबी और औरत होने के द्वन्द की चक्की में लगातार ऐसी पिसती हैं कि उनकी हालत को शब्दों में बयान करना भी मुश्किल है। क्योंकि मुनाफ़े पर टिकी इस नरभक्षी पूँजीवादी व्यवस्था ने जीती-जागती औरत को महज एक वस्तु में बदलकर रख दिया है, जिसे बाक़ी वस्तुओं की तरह ख़रीदा और बेचा जा सकता है और उसके साथ हर तरह का अमानवीय व्यवहार किया जा सकता है।

औरतों के साथ होते इस अमानवीय व्यवहार की अनेकों घटनाएँ हमारे सामने होती रहती हैं। अब ये तथ्य सामने आये हैं कि अमीरों की सुन्दरता बढ़ाने के लिए नेपाल के गाँवों में से गरीब परिवारों की लड़कियों को एजेण्ट ख़रीदकर भारत ले आते हैं, जहाँ उनको बेहोश करके उनके

शरीर के कुछ हिस्सों की चमड़ी उतार ली जाती है। इसके बदले उन्हें महज दस से पन्द्रह हज़ार रुपये दिये जाते हैं और आगे यह चमड़ी बहुत ऊँची क्रीमतों पर बेची जाती है। चमड़ी उतारने के बाद इन लड़कियों को मुम्बई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे महानगरों में देह-व्यापार के धन्धे में धकेल दिया जाता है। जहाँ सोलह-सोलह, सत्रह-सत्रह वर्ष की इन नर्तकियों के सारे अरमान एक-एक करके टूट जाते हैं। जब उन्हें कागज़ के टुकड़े के बदले वहशी दरिन्दों के आगे फेंक दिया जाता है, जिनका कसूर सिर्फ़ इतना ही होता है कि उनके गरीब माँ-बाप ने उन्हें इस धरती पर जन्म दिया।

इन कोठों पर से भाग निकलने या आत्मरक्षा का कोई भी रास्ता इनके पास नहीं होता। क्योंकि अगर कोई लड़की भागने की कोशिश करती पकड़ी जाये तो उसको अपनी जान से हाथ धोने पड़ जाते हैं और उसको जानवरों की तरह मारकर गटर में फेंक दिया जाता है ताकि और कोई लड़की ऐसा करने की हिम्मत न कर सके। लेकिन फिर भी बहुत सारी औरतें इस नर्कभरी ज़िन्दगी से निजात हासिल करने के लिए भागने की कोशिश

करती हैं ताकि वह इंसानों जैसी ज़िन्दगी जी सके, लेकिन वहाँ दलालों की सख्त पहरेदारी उन्हें ऐसा करने का कोई मौक़ा नहीं देती। एक लड़की का कहना था कि कई लड़कियाँ तो इस ज़िन्दगी से दुखी होकर आत्महत्या भी कर लेती हैं।

सुशीला थापा नाम की एक लड़की के मुताबिक वह इस धन्धे की ज़िन्दगी से बहुत जल्दी दुखी हो गयी थी और वह बहुत चुस्ती से दलालों को चकमा देकर तीन वर्षों बाद भागने में सफल हो गयी थी। लेकिन जब वह अपने गाँव सिन्धुपाल चौक गयी, जो कि काठमाण्डू से लगभग 75 किलोमीटर दूर है, तो उसके गाँव के कुछ लोगों ने अपनी झूठी इज़्जत के लिए इस लड़की को अपने गाँव में रखने से इन्कार कर दिया। कोई और रास्ता न होने के कारण उसने मौत जैसी ज़िन्दगी को फिर गले लगा लिया। वह किसी एजेण्ट के ज़रिये अपने पेट की आग बुझाने के लिए दुबारा देह-व्यापार के धन्धे में शामिल हो गयी। जहाँ रहना उसे एक पल भी अच्छा नहीं लगता, वहाँ वह सारी ज़िन्दगी बिताने के लिए मजबूर हो गयी। उसका कहना है कि वह अपनी मौत का इन्तज़ार कर रही है। बस

खुद मरा नहीं जाता, लेकिन यहाँ की ज़िन्दगी और मौत में कोई अन्तर नहीं है।

चमड़ी की तस्करी में शामिल एजेण्ट का कहना है कि इन नेपाली लड़कियों की चमड़ी गोरे रंग की होने के कारण दुनिया-भर में बहुत ऊँची क्रीमतों पर बिकती है। जो अमीरों की, खास करके अमीर औरतों की सुन्दरता बढ़ाने के लिए प्लास्टिक सर्जरी करने और छातियाँ बड़ी करने आदि के कामों में इस्तेमाल की जाती है।

एक और कोमल नाम की लड़की ने बताया कि अपनी चमड़ी बेचने के कारण बेशक कुछ पैसे इकट्ठा तो हमें ज़रूर मिल जाते हैं, लेकिन इसके बाद हमें बहुत नुक़सान होता है। क्योंकि फिर हमारे पास कोई अच्छा ग्राहक नहीं आता, जो ग्राहक आते हैं वे हमारे शरीर पर दाग़ देखकर या तो हमारे पास रुकना पसन्द नहीं करते या फिर बहुत थोड़े पैसे देकर हमें अपनी हवस का शिकार बनाते हैं। वे हमारे साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं, बल्कि हमसे उम्मीद करते हैं कि हम उनके साथ प्रेमिकाओं जैसा व्यवहार करें, कुत्ते!

देह व्यापार के धन्धे के साथ

मानवीय चमड़ी की तस्करी का यह धन्धा आजकल ज़ोरो-शोरों पर चल रहा है और लगातार बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2002 से लेकर अब तक इस धन्धे में 70 फ़ीसदी की वृद्धि हुई है और बहुत ज़्यादा लोग इस धन्धे में शामिल हो चुके हैं। ऐसे ही अमानवीय धन्धों को रोकने के लिए सरकारों के कानून का मुँह पूरी तरह बन्द है।

दरअसल अमीरों की सुन्दरता को बढ़ाने के लिए गरीब औरतों की ज़िन्दगी को बदसूरत करना इस पूँजीवादी व्यवस्था के लिए कोई हैरानीजनक बात नहीं, बल्कि आज पूरी पूँजीवादी व्यवस्था ही मुट्ठी-भर पूँजीपतियों की ज़िन्दगी को ख़ूबसूरत बनाने के लिए करोड़ों लोगों की ज़िन्दगी को बदसूरत बना रहा है। इसलिए ज़रूरत है कि आज मेहनतकश लोगों और नौजवानों को लामबन्द करके समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करने के लिए तैयार किया जाये जिसमें ऐसी अमानवीयताओं से छुटकारा पाया जा सके।

— इनजिन्दर

आइसिन ऑटोमोटिव, रोहतक के मज़दूरों का जुझारू संघर्ष जारी है

(पेज 3 से आगे)

आइसिन के मज़दूरों पर हुए लाठीचार्ज और दमन के खिलाफ़ विभिन्न जनसंगठनों का जन्तर-मन्तर पर विरोध प्रदर्शन

1 जून को दिल्ली के जन्तर मन्तर पर हरियाणा के आइसिन मज़दूरों पर हुए बर्बर लाठीचार्ज और गिरफ़्तारी के खिलाफ़ विरोध प्रदर्शन आयोजित किया गया। 3 मई से अपने जायज़ अधिकारों के लिए संघर्षरत आइसिन मज़दूरों पर पुलिस ने संघर्ष के 29वें दिन 31 मई की शाम 4 बजे के करीब बर्बर

लाठीचार्ज किया और तक्ररीबन 450 मज़दूरों व मज़दूर कार्यकर्ताओं, जिनमें करीब 40 स्त्री मज़दूर भी शामिल थीं, को गिरफ़्तार कर लिया। सभी पुरुष मज़दूरों पर आईपीसी की 323, 186, 114, 341, 342, 332, 353 और 284 जैसी धाराएँ लगायी गयी हैं। सभी मज़दूरों को रोहतक की सुनारियाँ और झज्जर जेल में रखा गया है।

बिगुल मज़दूर दस्ता की तरफ़ से बात रखते हुए शिवानी ने कहा कि मोदी सरकार का मज़दूर विरोधी चेहरा तो पहले से सबके सामने है और आइसिन

के मज़दूरों के साथ हो रहा दमन उसी का एक और उदाहरण है। जो मोदी जी देश में हर साल 1 करोड़ नये रोजगार बनाने की बात कहते थे, आज उन्हीं की सरकार लोगों से उनके रोजगार छीन रही है और उनके हक़ों से उन्हें महरूम कर रही है। प्रदर्शनकारियों ने अपनी माँगों का एक ज्ञापन हरियाणा के मुख्यमन्त्री मनोहर लाल खट्टर को भी सौंपा। प्रदर्शनकारियों की माँगें थीं :

1. सभी गिरफ़्तार मज़दूरों व मज़दूर कार्यकर्ताओं पर लगी धाराएँ वापिस ली जायें और उन्हें जल्द से

जल्द रिहा किया जाये।

2. सभी हिरासत में बन्द महिला मज़दूरों को भी जल्द से जल्द रिहा किया जाये।

3. मज़दूरों की सभी जायज़ माँगों को संज्ञान में लेते हुए उन पर बिना किसी विलम्ब के कार्यवाही की जाये।

4. सभी निकाले गये मज़दूरों को काम पर बहाल किया जाये।

5. लाठीचार्ज में लिस सभी पुलिस कर्मियों और प्रशासन के अधिकारियों के खिलाफ़ सख्त

कार्यवाही की जाये।

प्रदर्शन में बिगुल मज़दूर दस्ता के साथ, ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन, नौजवान भारत सभा, दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन और दिशा छात्र संगठन ने शिरकत की।



व्हाट्सअप पर बँटती अफ़्रीम

आज वॉट्सअप पर एक सन्देश मिला। जो नोटबन्दी पर मेरी एक पोस्ट के जवाब में था। उसमें कहा गया कि मोदी भी लूट रहा है। ठीक है, पर ये राहुल, मुलायम, मायावती कौन से बड़े ईमानदार लोग हैं। आज सब मुल्लों के तलवे चाटने में लगे हैं। तुम भी मोदी को सपोर्ट करो, नहीं तो एक दिन मुल्ला बनना पड़ेगा।

यही बात है जो सबसे खतरनाक है। इतने लोग देश में मरे, नौकरी गँवाई, परेशान हुए लाइनों में लगकर पर देश की जनता में जो गुस्सा पैदा होना चाहिए था, वो नहीं हुआ। कारण यही था। आज आरएसएस ने ज़मीनी स्तर पर जो साम्प्रदायिक प्रचार किया है, उसका असर इतना व्यापक है कि एक बड़ी संख्या में लोग उस अफ़्रीम के नशे में सो गये हैं।

सच्चे हिन्दू / कट्टर हिन्दू / माँ भारती / भारत हिन्दू राष्ट्र / जागो हिन्दू जैसे नामों वाले ग्रुपों में ये अफ़्रीम बाँटी जा रही है। इसके अतिरिक्त सैकड़ों की संख्या में फ़ेक न्यूज वेबसाइट बन गयी हैं, जो झूठी वीडियो, फ़ोटोशॉप किये फ़ोटो या फ़ेक न्यूज चलाकर यही काम कर रही हैं।

आज नोटबन्दी की वजह से भारत का जीडीपी ग्रोथ 6.1% पर आ गया है। पूरी दुनिया के बड़े अर्थशास्त्री नोटबन्दी की बुराई कर रहे हैं, वर्ल्ड बैंक ने भी बोला है कि नोटबन्दी की वजह से जीडीपी में गिरावट आयी है। करीब 2 लाख लोग बेरोज़गार हो गये। सरकार चुपके-चुपके खुद मान रही थी कि नोटबन्दी फेल कर गयी, इसीलिए कैशलेस इकोनॉमी का नया जुमला सामने ला रही थी, जोकि शुरू में काला धन और आतंकवाद था। पर जो लोग अफ़्रीम के नशे में डूबे हुए हैं, उनको इस सबसे मतलब ही नहीं है। आज डॉलर के मुक़ाबले रुपये की कीमत 63 हो गयी है जो 2013 में 1 डॉलर = 58 रुपये थी। फिर भी उस आबादी को इससे ख़ास मतलब नहीं है, जबकि कांग्रेस के समय

में इसी बात पर मीडिया और सोशल मीडिया रंग दी जाती थी।

देश में भयंकर बेरोज़गारी फैली है और नये रोज़गार पैदा नहीं हो रहे हैं, पर इससे भी उन लोगों को फ़र्क़ नहीं पड़ता, उनको क्या दीखता है?

यही की मोदी ही हिन्दुओं की बात करने वाला अकेला इंसान है। उनको बताया गया है कि 90 करोड़ हिन्दुओं को 18 करोड़ मुस्लिमों से ख़तरा है। यह उसी अफ़्रीम का करिश्मा है।

हर बुराई का कारण मुस्लिम हैं, देश में महँगाई, बेरोज़गारी, ग़रीबी का कारण सरकार और कॉर्पोरेट की लूट नहीं बल्कि मुस्लिम हैं, किसान आत्महत्या मुस्लिमों की वजह से कर रहे हैं, भले ही मुस्लिम खुद ही ज़्यादा ग़रीब हैं। एक बार मुस्लिम पाकिस्तान चले जाय तब देखो कैसे देश फिर सोने की चिड़िया बनता है।

अफ़्रीम के नशे में डूबे ऐसे लोगों को सोचना चाहिए, अपने आस-पास की समस्याओं पर गौर करना चाहिए कि इनका क्या कारण है?

11000 करोड़ की सरकारी गैस चुराने वाला अम्बानी, 9000 करोड़ रुपये क़र्ज़ लेकर भागने वाला माल्या, दाल की जमाखोरी कर उसे 200 रुपये किलो बेचने वाला अडानी -- क्या ये सब मुस्लिम हैं; क्या 2G, कोयला ब्लॉक घोटाला, ताबूत घोटाला, कफ़न घोटाला, व्यापम घोटाला, एनआरएचएम घोटाला -- ये सब मुस्लिमों का किया-धरा है?

मज़दूरों का कारखानों में खून चूसने वाले सारे मालिक क्या मुस्लिम हैं? किसकी वजह से लोग बर्बाद हो रहे हैं, कौन है जो लोगों को लड़ाकर उनकी लाशों पर अय्याशी करता है? कहीं ये सब उसी की चाल तो नहीं कि हम आपस में ही लड़ते रहें।

अफ़्रीम में डूबे ऐसे लोगों को जर्मनी और इटली का इतिहास पढ़ना चाहिए। आरएसएस की विचारधारा के पिता है वे। कैसे वहाँ भी हिटलर

ने जनता को बड़े-बड़े सपने दिखाये और सब समस्याओं की जड़ वहाँ के अल्पसंख्यक समुदाय यहूदियों को ठहराया। बाद में बड़े पैमाने पर क़त्लेआम हुए। 60 लाख यहूदियों को मार डाला गया। दूसरा विश्वयुद्ध हुआ, जिसमें जर्मनी की हार हुई और जर्मनी के लाखों लोग मारे गये। जर्मनी युद्ध में तबाह हो गया। पूरी दुनिया में करोड़ों लोग मरे और उस हिटलर ने खुद आत्महत्या कर ली। इटली के फ़ासीवादी पार्टी के तानाशाह मुसोलिनी को तो जनता ने सरेआम चौराहे पर उल्टा लटकाकर पीटा और मार डाला। आज जर्मनी उस समय को एक काला समय मानता है।

इतिहास की ये सच्चाई जानने के बाद शायद उनका नशा कुछ कम हो। उनको पता लगे कि वो दुनिया में पहली बार उन्माद में पागल नहीं हुए हैं। फिर जो रोज़-रोज़ वॉट्सअप पर डोज़ मिलती है अफ़्रीम की, उसका असर शायद कम हो जाये।

अगर मोदी को हिन्दुओं की इतनी ही फ़िक्र है तो क्या महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में जो किसान आत्महत्या कर रहे हैं, उनमें हिन्दू नहीं हैं, तो उनका कुल 90 हजार करोड़ क़र्ज़ माफ़ करने में सरकार अर्थव्यवस्था का रोना क्यों रो रही है, जबकि 1 साल पहले ही बड़े-बड़े पूँजीपतियों का 1.15 लाख करोड़ का क़र्ज़ माफ़ किया गया?

जो हर रोज़ हमारे देश में 6000 बच्चे कुपोषण से मरते हैं, क्या उनमें हिन्दुओं के बच्चे नहीं होते?

जबकि सरकार एफ़सीआई के गोदामों में लाखों टन अनाज सड़ा देती है।

क्या उन मज़दूर और किसानों के लड़के-लड़कियों में हिन्दू नहीं हैं जो आज पढ़-लिखकर बेरोज़गार धक्के खा रहे हैं या 8-10 हजार के लिए जिनका खून चूसा जा रहा है। तो मोदी जी सरकारी विभागों में खाले पड़े तकरीबन 30 लाख पदों को भर क्यों नहीं रहे?

ऐसे सैकड़ों सवाल हैं जो ये साबित

करते हैं कि मोदी पूरे देश की जनता को बर्बाद कर रहा है, जिनमें मुख्यतः हिन्दू हैं क्योंकि जनता चाहे हिन्दू हो या मुसलमान सबकी ज़रूरतें एक ही हैं। एक मस्जिद कम बनेगा या एक मन्दिर कम बनेगा तो चलेगा, पर आपका बच्चा बीमार पड़ता है तो उसके लिए हॉस्पिटल बनना बहुत ज़रूरी है। और जो लोग दोनों को लूट रहे हैं, वही दोनों को आपस में लड़ाते हैं कि उनकी लूट चलती रहे। तो *इस पर सोचा जाना चाहिए। कहीं कोई हमारी देशभक्ति या सीधी मानसिकता का फ़ायदा तो नहीं उठा रहा।*

ऐसे लोगों को ये भी लगता है कि देश में जो भी आन्दोलन हो रहे हैं, जो भी विरोध हो रहा है, वो सब कांग्रेसियों, वामपन्थियों की साज़िश है मोदी जी को बदनाम करने की। इसीलिए देश में जहाँ भी कोई आन्दोलन खड़ा हो रहा है मुख्यधारा का मीडिया और बीजेपी और आरएसएस का आईटी सेल उसको मोदी के खिलाफ़ एक साज़िश के रूप में दिखा रहा है। इसीलिए तमिलनाडु के किसान जब जन्तर-मन्तर पर विरोध कर रहे थे, तो बीजेपी आईटी सेल ये साबित करने में लगा हुआ था कि ये तो किसान ही नहीं हैं, ये तो बिस्लरी पीते हैं, ये करते हैं, वो करते हैं। जब सेना के जवान ने ख़राब खाने का विरोध किया तो उसको पाकिस्तानी एजेंट घोषित कर दिया गया, उसके पाकिस्तान से तार जोड़े जाने लगे। सहारनपुर दंगों के बाद भीम आर्मी के नेता चन्द्रशेखर आज़ाद का असली नाम भी बीजेपी के आईटी सेल ने अपनी लेब्रोटीरी में ढूँढ़ निकाला, चन्द्रशेखर आज़ाद को नसीमुद्दीन बताया गया। इसी प्रकार एनडीटीवी के मालिक प्रणव रॉय के ऑफ़िस और घर पर सीबीआई के छापे के बाद आईटी सेल ने बताया कि वहाँ प्रणव का जन्म प्रमाण पत्र मिला है जिसमें उनका नाम परवेज राजा है और एनडीटीवी का फुलफ़ॉर्म नवाजुद्दीन तौफ़ीक़ वेंचर है, जबकि ये दोनों बातें साफ़-साफ़ झूठ थीं।

इसी प्रकार इस समय मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में कर्ज़माफ़ी और फ़सल की सही क़ीमत को लेकर आन्दोलन कर रहे किसानों को बीजेपी आईटी सेल कांग्रेसी और असामाजिक तत्व बता रहा है। जो भी अच्छा हो रहा है, वो मोदी जी कर रहे हैं और जो भी बुरा हो रहा है वो कांग्रेसियों और वामपन्थियों की साज़िश है। अफ़्रीम का नशा बहुत बढ़ जाये, इससे पहले हमें आँखों पर आईटी सेल (साइबर आर्मी) ने जो चश्मा लगाया है, उसको फेंककर अपने आस-पास का माहौल देखना चाहिए कि क्या वाक़ई हमारी ज़िन्दगी में 2014 के बाद कोई बड़ा बदलाव आया है? चलिए आप किसी न्यूज़ वाले की मत मानिए पर अपनी ज़िन्दगी को देखिए, अपने परिवार और आसपास को देखिए और खुद निर्णय कीजिए कि कितना बदलाव हुआ है।

इसके अतिरिक्त बीजेपी और मोदी विरोध को कांग्रेसी होने या सपाई होने या आपिये होने से हर बार नहीं जोड़ा जा सकता। मोदी का विरोध करने वाले सबलोग कांग्रेसी एजेंट या मुलायम या केजरीवाल समर्थक नहीं हैं। भाजपा का विरोध कांग्रेस का समर्थन नहीं है। ये सब भी भाजपा से ज़्यादा अलग नहीं हैं। सब अडानी-अम्बानी की चाकरी करने वाले अलग-अलग मुखौटे में उनके सेवक ही हैं। ज़रूरत है इनकी चालों को समझने की और जनता को एकजुट करके इनके खिलाफ़ लड़ने की। गाँव, कॉलोनी स्तर पर जन संगठन बनाकर अपनी सही माँगों के लिए लड़ने की और आगे एक बेहतर विकल्प खड़ा करके एक बेहतर समाज और व्यवस्था के लिए संघर्ष करने की। जैसा कि भगत सिंह ने कहा था -

जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो
सही लड़ाई से नाता जोड़ो।

— नितेश शुक्ला

बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र, गोरखपुर के अंकुर उद्योग कारखाने के मज़दूर आन्दोलन की राह पर

गोरखपुर स्थित बरगदवा औद्योगिक क्षेत्र के अंकुर उद्योग कारखाने के मज़दूर 12 जून से हड़ताल पर हैं। हड़ताल की वजह कारखाने के भीतर तापमान बहुत ज़्यादा होने सहित फ़ैक्टरी प्रबन्धन द्वारा श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाकर मज़दूरों से ज़बरदस्ती मन मुताबिक़ काम करवाना है।

ज्ञात हो कि अंकुर उद्योग लि. कारखाने में लगभग 1100 मज़दूर काम करते हैं जो बिहार के सिवान, छपरा ज़िले तथा गोरखपुर व इसके आसपास के ज़िलों के रहने वाले हैं। इस कारखाने में धागा बनाने का काम होता है। कारखाने का मालिक अंकुर जालान है, लेकिन वास्तविक प्रबन्धन उसका बाप अशोक जालान देखता है।

1998 में स्थापित इस कारखाने में श्रम क़ानूनों के लागू होने या न होने

की जाँच की जाये तो यही पता चलेगा कि जैसे श्रम क़ानून इस कारखाने के लिए बनाये ही न गये हों। इस कारखाने के 1100 मज़दूरों में से केवल 27 मज़दूरों को ही कुशल मज़दूर के रेट से मज़दूरी दी जाती है और ये 27 मज़दूर कोई मशीन नहीं चलाते हैं, बल्कि ये जाबर हैं जो देखरेख करते हैं, मतलब कारखाने में कोई भी मज़दूर कुशल मज़दूर की मज़दूरी नहीं पाते। 15 तारीख को प्रबन्धन व मज़दूर प्रतिनिधियों के बीच उपश्रमायुक्त की मध्यस्थता में हो रही वार्ता के दौरान जब यह माँग रखी गयी कि कारखाने में नियमित मशीन चला रहे कारीगरों को कुशल मज़दूर का वेतन दिया जाये, तब उपश्रमायुक्त ने कहा कि यूपी राज्य में टेक्सटाइल सेक्टर में कुशल, अर्द्धकुशल व अकुशल का निर्धारण मानक तय ही नहीं है। जब

उपश्रमायुक्त से यह पूछा गया कि फिर किस आधार पर 27 मज़दूरों को कुशल तथा शेष 1050 मज़दूरों को अर्द्धकुशल व अकुशल की मज़दूरी दी जाती है, इस पर उपश्रमायुक्त ने गोलमोल जवाब देते हुए कहा कि यह फ़ैक्टरी के मालिक का निर्धारण है। श्रम विभाग की हालत का इसी से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। फ़ैक्टरी प्रबन्धन द्वारा मज़दूरों के साथ गाली-गलौच, धक्का-मुक्की आम बात है। पीने के साफ़ पानी का कोई इन्तज़ाम नहीं है। शौचालय गन्दगी और बदबू से भरा रहता है, कभी उसकी सफ़ाई नहीं करायी जाती है। इतनी भीषण गर्मी में बिजली का खर्च बचाने के लिए सभी एंज़ास्ट बन्द रहते हैं, जिससे असह्य तापमान पर काम करने के लिए मज़दूर बाध्य हैं। लगभग 100 मज़दूर जो नियमित साफ़-सफ़ाई का काम करते हैं

और इनमें से कई मज़दूर 1998 से ही काम कर रहे हैं, लेकिन इनको केवल 5900 रुपये ही दिया जाता है, जबकि अकुशल मज़दूर की मज़दूरी 7400 रुपये है। पहचान पत्र, ईएसआई, ईपीएफ़ जैसी कोई सुविधाएँ नहीं मिलतीं।

फ़ैक्टरी प्रबन्धन तमाम तिकड़मों व तानाशाही से वर्कलोड बढ़ाता जा रहा है। कारखाने में एक डिपार्टमेंट है जिसे सम्प्लेक्स कहते हैं। इस डिपार्टमेंट के एक सेक्शन में जनवरी तक 27 मज़दूर काम करते थे, लेकिन जनवरी के बाद मशीन की प्रोडक्शन स्पीड भी बढ़ा दी गयी और 27 से घटाकर मज़दूरों की संख्या 25 कर दी गयी। जनवरी 2017 से ही लगभग 500 मज़दूरों की मज़दूरी में से 12 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से कटौती भी कर दी गयी। इस दौरान जिस भी मज़दूर ने आवाज़ उठायी, उन सबको

कारखाने से बाहर कर दिया गया। साल-भर पहले बिगुल मज़दूर दस्ता के नेतृत्व में अंकुर उद्योग लिमिटेड के मज़दूर इन सारी समस्याओं के खिलाफ़ एकजुट होकर लड़े थे और फ़ैक्टरी प्रबन्धन को सारी माँगें मानने के लिए बाध्य होना पड़ा था। लेकिन मज़दूर प्रतिनिधियों की गद्दारी की वजह से फ़ैक्टरी प्रबन्धन मज़दूरों की एकता को तोड़ने में कामयाब हो गया था जिससे मज़दूर जीती हुई लड़ाई हार गये। तब से फ़ैक्टरी प्रबन्धन व गद्दारों की मिलीभगत से मज़दूरों की एकजुटता बिखरी रही। अब सभी गद्दारों को किनारे करके एक बार फिर से बिगुल मज़दूर दस्ता के नेतृत्व में सभी मज़दूर संकल्पबद्ध होकर एकजुट हुए हैं कि जब तक हमारी माँगें नहीं मानी जायेंगी, तब तक हड़ताल जारी रहेगी।

मोदी की नोटबन्दी ने छीने लाखों मज़दूरों से रोज़गार

मोदी सरकार द्वारा पिछले वर्ष अक्टूबर में घोषित की गयी नोटबन्दी से काले धन का कुछ भी नहीं बिगड़ा। न ही सरकार का ऐसा कोई इरादा ही था। काले धन और भ्रष्टाचार के खात्मे की सभी बातें हवाई थीं। पिछले आठ महीनों में यह साबित हो चुका है। जब देश की साधारण जनता बैंकों के सामने लम्बी लाइनों में खड़ी कर दी गयी थी कोई भी काले धन का मालिक इन लाइनों में खड़ा नहीं दिखा। जब सैकड़ों लोग मुद्रा की कमी के कारण बीमारियों का इलाज न हो पाने, भोजन न खरीद पाने, आदि के कारण मर रहे थे, आत्महत्याएँ कर रहे थे उस समय काले धन का कोई मालिक नहीं मरा। किसी भ्रष्टाचारी ने आत्महत्या नहीं की। नोटबन्दी भारत के मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए किसी महामारी से कम नहीं थी। इसने जनता की जिन्दगी में इतनी बड़ी तबाही मचायी है, उसका पूरा लेखा-जोखा कर पाना सम्भव नहीं है। इस तबाही का एक पक्ष यह है कि देश के लाखों मज़दूरों को नोटबन्दी के कारण बड़े स्तर पर बेरोज़गारी-अर्धबेरोज़गारी का सामना करना पड़ा है। मोदी सरकार भले कितने भी झूठे दावे करती रहे, बिकाऊ मीडिया भले ही नोटबन्दी के झूठे फ़ायदे गिना-गिनाकर लोगों को गुमराह करने की कितनी भी कोशिशें

क्यों न करे, लेकिन असल में सच्चाई यही है।

नोटबन्दी वाली, पिछले वर्ष की आखिरी तिमाही के बारे में जारी लेबर ब्यूरो की रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि मैन्युफ़ैक्चरिंग, ट्रांसपोर्ट, सूचना-तकनीक सहित विभिन्न क्षेत्रों में करीब दो लाख कच्चे-अस्थाई-दिहाड़ी-पार्ट टाइम मज़दूरों का रोज़गार छिना है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि ये सरकारी आँकड़े पूँजीपतियों द्वारा लेबर ब्यूरो को उपलब्ध करवायी गयी जानकारी पर आधारित हैं। यह जानकारी उन कच्चे-अस्थाई-दिहाड़ी मज़दूरों के बारे में है जिनका रिकॉर्ड पूँजीपति रखते हैं। लेकिन वास्तव में काम पर रखे जाने वाले ज़्यादातर मज़दूरों का रिकॉर्ड ही नहीं रखा जाता। इसलिए उनको काम से निकाले जाने का भी कोई रिकॉर्ड नहीं होता। इसलिए नोटबन्दी के दौरान छोटे-बड़े कारखानों और सभी कार्यस्थलों से सम्बन्धित मज़दूरों के रोज़गार छिनने की लेबर ब्यूरो द्वारा पेश तस्वीर समूची तस्वीर नहीं है। रोज़गार छिनने के वास्तविक आँकड़े तो इससे भी कहीं ज़्यादा भयानक होंगे।

ऐसा नहीं है कि नोटबन्दी ने ही बेरोज़गारी की समस्या पैदा की है। यह समस्या तो पहले से ही मौजूद है। बेरोज़गारी की समस्या पूँजीवादी

व्यवस्था का अभिन्न अंग है। इस व्यवस्था के रहते हुए समाज कभी भी इस समस्या से छुटकारा हासिल नहीं कर सकता। लेकिन इस व्यवस्था की सेवक राजनीतिक पार्टियाँ जनता को लुभाने के लिए इसी व्यवस्था के भीतर ही बेरोज़गारी को हल कर देने के झूठे वादे करती हैं। सत्ता हासिल करने के लिए भाजपा ने भी लोगों को बड़े स्तर पर रोज़गार देने के वादे किये थे। नरेन्द्र मोदी ने तो प्रत्येक वर्ष दो करोड़ लोगों को रोज़गार देने का वादा कर दिया। लेकिन ये दो करोड़ रोज़गार तो क्या पैदा होने थे, नोटबन्दी द्वारा लाखों मज़दूरों का रोज़गार छिन लिया गया। इस तरह नोटबन्दी से बेरोज़गारी की समस्या और अधिक भयानक बन गयी। वैसे तो नोटबन्दी के दौरान यह साफ़ दिख ही रहा था कि मज़दूरों की नौकरियाँ छिन रही हैं। खासकर दिहाड़ी पर काम करने वाले या कच्चे मज़दूरों के रोज़गार छिनना सबके सामने था। लेकिन मोदी सरकार द्वारा नोटबन्दी के नुकसानों को बेशर्मा से झुठलाया जा रहा था। मोदी सरकार की पोल इसके श्रम मन्त्रालय के लेबर ब्यूरो द्वारा जारी इस रिपोर्ट ने ही खोल दी है।

अर्थव्यवस्था पहले ही मन्दी का शिकार थी। नोटबन्दी ने अर्थव्यवस्था को और अधिक मन्दी की ओर

धकेल दिया। भाजपा ने विकास के, जनकल्याण, भ्रष्टाचार के खात्मे के बड़े-बड़े दावे करते हुए केन्द्र में सरकार कायम की थी। नरेन्द्र मोदी को इस तरह से पेश किया गया जैसे वह सारी समस्याएँ छू-मन्तर कर देगा। अच्छे दिनों का सपना दिखा करके जनता को भरमाया गया। लेकिन ढाई वर्षों के दौरान मोदी सरकार ने बदनामी करवाने के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये थे। इसके सारे दावों की हवा निकल गयी। जनता का ध्यान वास्तविक मुद्दों से हटाने के लिए, भ्रष्टाचार, काले धन विरोधी हीरो के रूप में नरेन्द्र मोदी को पेश करने के लिए, भ्रष्टाचार के खिलाफ़ नकली लड़ाई को वास्तविक दिखाने के लिए नोटबन्दी का महाझामा रचा गया। सरकार को यह परवाह नहीं थी कि इससे ग़रीब मज़दूरों-मेहनतकशों की जिन्दगी में क्या तबाही मचने वाली है। इसमें कोई हैरान होने वाली बात भी नहीं है। लुटेरे हुक्मरान अपने हितों की पूर्ति के लिए जनता पर किसी भी तरह का क्रूर बरपा सकते हैं।

पहले ही भयानक ग़रीबी की मार झेल रहे, बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए दिन-रात जूझने वाले मज़दूरों की जिन्दगी मुद्रा की कमी ने और भी मुश्किल कर दी थी। ऊपर से रोज़गार छिनने के चलते परिस्थितियाँ और भी भयानक बन गयीं। यह नोटबन्दी स्त्री

मज़दूरों के लिए अधिक मुश्किल समय लेकर आयी। नौकरी छिनने के बाद मर्द मज़दूरों के लिए लेबर चौराहों में जाकर खड़े होने जैसे विकल्प मौजूद थे, जिससे कुछ दिन ही सही पर कुछ कमाई तो की ही जा सकती है। लेकिन स्त्री मज़दूरों के लिए ऐसे रास्ते बन्द हैं।

नोटबन्दी के कारण भोजन, दवा-इलाज, शिक्षा, कमरों का किराया, ट्रांसपोर्ट जैसी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ग़रीब मज़दूरों की मुश्किलें और बढ़ गयीं। नोटबन्दी के कारण हुई सैकड़ों मौतों ग़रीबों पर बरपे क्रूर का ही एक पहलू है। जिन्दा मज़दूर अपनी साँस कैसे चालू रखें, कैसे अपने दिन काटें, इस बारे में सोचना भी कितना दर्दनाक है। सोचिए, जिन्होंने यह क्रूर झेला है उन्होंने कितना दर्द सहा होगा। लेकिन देश के हुक्मरान नोटबन्दी को बहादुरी का नाम देते हैं। इसे देश भक्ति कहते हैं।

नोटबन्दी को काले धन पर सर्जिकल स्ट्राइक कहकर प्रचारित किया गया है। जिस तरह मज़दूरों को रोज़गार गँवाने पड़े हैं, उससे साफ़ देखा जा सकता है कि इस सर्जिकल स्ट्राइक का असल निशाना ग़रीब मज़दूर-मेहनतकश बने हैं।

- लखविन्दर

विश्व स्तर पर मज़दूरों की हालत और गिरी - भारत निचले 10 देशों में शामिल

भारत के हुक्मरान इसके विश्व गुरु होने की बातें कर रहे हैं। हर देश में बहुत कुछ ऐसा होता है जिससे बाक़ी दुनिया भी सबक ले सकती है। कोई शिक्षा किसी के पक्ष में हो सकती है, किसी के विरोध में। मौजूदा समय में भारत में जो हालात हैं, यहाँ के हुक्मरानों की काली करतूतों के कारण जनता की हालतें जिस कदर बदतर हो चुकी हैं, उसको देखते हुए समझा जा सकता है कि विश्व गुरु बनने की बातें देश-दुनिया के किस वर्ग के पक्ष में हो रही हैं और हुक्मरानों की ऐसी ही बेशर्मा बातें सुनकर घिन आती है।

हुक्मरानों के प्रति यह घिन और भी ज़्यादा बढ़ जाती है जब विश्व स्तर पर भारत के मेहनतकश जनता की हालत की तुलना करते हैं। भारत वह देश है जो मेहनतकश जनता की बुरी हालतों के मामले में रिकॉर्ड पर रिकॉर्ड तोड़ रहा है, जो मज़दूरों के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक हक़ छीनने के मामले में आगे की क्रतारों में पहुँच चुका है। विश्व गुरु की भूमिका निभाते हुए देश के हुक्मरान यही तो बाक़ी दुनिया के लुटेरे हुक्मरानों को सिखाना चाहते हैं कि देखो हमें हम मज़दूरों-मेहनतकशों के अधिकारों को छीनने में कितने माहिर हैं, सीखो हमसे कैसे जनता का दमन करना है, कैसे अधिकारों के लिए उठी हर आवाज़ को दबाना है।

पिछले वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन संघ की एक रिपोर्ट जारी हुई थी - 'आईटीयूसी विश्व अधिकार सूचकांक 2016'। इस रिपोर्ट में कुल 141 देशों में

मज़दूरों की हालत का 91 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त सूचकों के आधार पर लेखा-जोखा किया गया है। यह रिपोर्ट यह अहम खुलासा करती है कि दुनिया के लगभग हर हिस्से में मज़दूरों के हक़ कमज़ोर पड़े हैं। इनमें से विचारों की अभिव्यक्ति और संगठित होने की आज़ादी के हक़ भी शामिल हैं। 25 देशों की एक अलग सूची तैयार की गयी है जिसमें उन देशों के नाम हैं जहाँ मज़दूरों के अधिकारों पर सबसे अधिक डाका मारा जा रहा है, श्रम अधिकारों के लिए संघर्ष करते मज़दूरों को हिंसा का शिकार बनाया और जेलों में डाला जा रहा है। रिपोर्ट के अनुसार इन मुल्कों में श्रम अधिकारों की कोई गारण्टी नहीं है। मज़दूरों को निरंकुश व्यवस्था और बुरे हालात का सामना करना पड़ रहा है। इन 25 देशों में से भी भारत पहले 10 देशों में शामिल है। इन 10 देशों में भारत के अलावा बेलारूस, चीन, कोलम्बिया, कम्बोडिया, गुआटेमाला, ईरान, क्रतर, तुर्की और सऊदी अरब अमीरात शामिल हैं।

वैसे जो खुलासे इस रिपोर्ट में हुए हैं वो कोई नये और हैरानीजनक नहीं हैं। भारत और विश्व के सभी देशों में लागू पूँजीवादी आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है। इससे पहले भी मज़दूरों की हालात के बारे में अनेकों रिपोर्टें जारी हो चुकी हैं। जो भी व्यक्ति मज़दूरों की जिन्दगी के साथ थोड़ा-बहुत भी जुड़ा हुआ है, वह इस बारे में जानता ही है कि भारत का मज़दूर वर्ग आज

कितने बुरे हालात का सामना कर रहा है।

भारत में मज़दूर वर्ग ने कुर्बानियों भरे संगठित संघर्षों द्वारा अनेकों अधिकार हासिल किये थे। पिछली सदी के आखिरी दशक की शुरुआत में कांग्रेस पार्टी की सरकार ने भारत में उदारकरण-निजीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों की शुरुआत की। पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़ों के रास्तों में से हर रुकावट हटाने के लिए मज़दूरों के जनवादी श्रम अधिकारों पर जोरदार हमला बोला गया। केन्द्र और राज्यों में भले ही किसी भी पार्टी की सरकार हो हर सरकार ने यही नीतियाँ लागू कीं। परिणामस्वरूप, आज हालत यह हो चुकी है कि मज़दूरों को न्यूनतम वेतन, हादसों और बीमारियों से सुरक्षा के प्रबन्ध, मुआवज़ा, ईएसआई, ईपीएफ़, बोनस, छुट्टियों, ओवरटाइम, यूनियन बनाने आदि सारे कानूनी अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। 5-6 फ़ीसदी मज़दूरों को ही इन श्रम अधिकारों के तहत कोई हक़ हासिल होते हैं। श्रम अधिकारों के हनन का सिलसिला लगातार जारी है। अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने पर पूँजीपतियों के गुण्डे और पुलिस मज़दूरों पर दमन करते हैं। श्रम विभाग और श्रम अदालतें हाथी के दाँत बनकर रह गये हैं। केन्द्र में मोदी सरकार आने के बाद देश स्तर पर श्रम अधिकारों पर बाक़ी के जनवादी अधिकारों के खिलाफ़ पूँजीपति वर्ग का मिशन और तेज़ हो गया है। इस तरह मज़दूरों की हालत 1990 से पहले से भी बहुत बुरी हो गयी है।

ये हैं वे शिक्षाएँ जो विश्व गुरु दुनिया

को देना चाहते हैं और दे रहे हैं।

जैसे कि रिपोर्ट में कहा गया है कि पूरी दुनिया में मज़दूरों के अधिकार लगातार कमज़ोर पड़ रहे हैं। असल में विश्व पूँजीवादी व्यवस्था जिस आर्थिक संकट से जूझ रही है (जो पूँजीवादी व्यवस्था का ढाँचागत संकट है और जिसका कारण पूँजीवादी वर्ग की मुनाफ़ाखोरी ही है) का सारा बोझ मज़दूर वर्ग पर डाला जा रहा है। सिकुड़ रहे मुनाफ़ों को बढ़ाने के लिए मज़दूर वर्ग की लूट तेज़ की जा रही है।

मज़दूरों के लिए सबसे अधिक बुरे हालात वाले देशों में चीन भी शामिल है। कोई पूछ सकता है कि वहाँ तो कम्युनिस्ट पार्टी का राज है और वहाँ तो समाजवादी व्यवस्था है फिर वहाँ मज़दूरों की हालत इतनी बुरी कैसे हो गयी है? लेकिन चीन में तो 1976 तक ही कम्युनिस्ट पार्टी की अगुवाई में मज़दूरों की सत्ता रही है। समाजवादी व्यवस्था में वहाँ मज़दूरों को बेहतर हालात हासिल थे और ये हालात लगातार सुधर रहे थे। अमीरी-ग़रीबी का अन्तर लगातार कम हो रहा था। 1976 में कॉमरेड माओ-त्से-तुङ की मौत के बाद हुए पूँजीवादी राज्यपलट के बाद मज़दूरों के हालात लगातार बिगड़ते गये हैं। कारखाने जिन पर पहले मज़दूर वर्ग का कब्ज़ा था उन पर पूँजीपति वर्ग का कब्ज़ा हो गया। मज़दूरों के श्रम अधिकार छिन लिये गये। इसके खिलाफ़ चीन का जूझारू मज़दूर वर्ग लगातार जोरदार जुझारू संघर्ष कर रहा है। कम्युनिस्ट पार्टी के भेस में चीन की सत्ता पर कब्ज़ा करने

वाला पूँजीपति वर्ग मज़दूरों के संघर्षों को भयानक दमन द्वारा कुचलने की कोशिश करता रहा है। इसलिए, क्योंकि चीन में अब नकली कम्युनिस्ट पार्टी (यानी पूँजीवादी पार्टी) का राज है और वहाँ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था लागू कर दी गयी है, चीनी मज़दूरों के भयानक हालात की कसूरवार बाक़ी दुनिया की तरह पूँजीवादी व्यवस्था ही है।

दुनिया के जिन देशों (अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान आदि) में मज़दूरों के हालात मुक़ाबलतन ठीक हैं, उन्हें कानूनी श्रम अधिकार हासिल हैं, इसका कारण यह नहीं है कि वहाँ के पूँजीपति लूटते नहीं हैं, कि वहाँ की सरकारें मज़दूर पक्षधर हैं। वास्तव में इन देशों में मज़दूरों में श्रम अधिकारों के प्रति जोरदार जनवादी चेतना है। दूसरा यह कि ये साम्राज्यवादी देश हैं जो अपनी आर्थिक और राजनीतिक/फ़ौजी ताक़त द्वारा विश्व के पिछड़े पूँजीवादी देशों की श्रमिक जनता के श्रम और स्रोत-साधनों की भयानक लूट-खसोट करते आये हैं। लेकिन जैसे-जैसे समय आगे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे इन देशों में भी मज़दूरों के अधिकारों को छीनने की कोशिशें तीखी होती जा रही हैं। उपरोक्त रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि सारे विश्व में ही मज़दूरों के हक़ कमज़ोर पड़ रहे हैं।

- लखविन्दर

भारतीय अर्थव्यवस्था का गहराता संकट और झूठे मुद्दों का बढ़ता शोर

(पेज 1 से आगे)

ज़्यादा है। देश में सबसे अधिक रोज़गार देने वाले क्षेत्रों में से एक, निर्माण क्षेत्र में 5.5 प्रतिशत की गिरावट आ गयी। बड़े पूँजीपतियों द्वारा लाखों करोड़ रुपये के कर्ज़े दबा लेने के कारण खस्ताहाल और नोटबंदी के दौरान लगे झटकों की मार खाये बैंकों की हालत का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जीवीए में वित्तीय, रियल एस्टेट और पेशेवर सेवाओं का हिस्सा घटकर सिर्फ़ 7.6 प्रतिशत रह गया।

जो भी विकास हुआ उसमें दो-तिहाई हिस्सा, 66.2 प्रतिशत, निजी उपभोग का रहा। सरकारी उपभोग 23.8 प्रतिशत रहा, मगर पूँजी निर्माण पिछले वर्ष के मुकाबले कम हो गया, जो निवेश की घटती माँग को दिखाता है। इन आँकड़ों का मतलब क्या है? चौथी तिमाही में विकास की दर में आयी भारी गिरावट से साफ़ है कि वर्तमान तिमाही में भी दर धीमी ही रहेगी।

बात महज़ आँकड़ों की नहीं है। मन्दी का आलम अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में महसूस किया जा सकता है। मोदी सरकार से साँठगाँठ करके हज़ारों करोड़ रुपये की लूट मचाने वाले कुछ घरानों को छोड़ दिया जाये तो बड़ी कम्पनियों की भी हालत खराब है। पिछले दिनों टाटा समूह के रतन टाटा भागे-भागे आर.एस.एस. के मुख्यालय नागपुर क्या करने गये थे, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। छोटे व्यापारियों-उद्योगपतियों के कारोबार में भारी गिरावट का रोना आप चौतरफ़ा सुन सकते हैं। इस स्थिति की सबसे बड़ी मार जिन मेहनतकशों पर पड़ी है, उनकी व्यथा कथा कहने वाला कोई नहीं है। करोड़ों रोज़गार छिन गये हैं। आईटी सेक्टर और बड़ी कम्पनियों में छंटनी की ख़बरें तो मीडिया में आ रही हैं लेकिन देश के तमाम औद्योगिक इलाकों में जाकर देखें तो पता चलेगा कि मज़दूरों पर मन्दी की मार कैसी पड़ रही है।

नये रोज़गार पैदा होने में भारी गिरावट और नौकरियों की कमी से बढ़ते जनता के असन्तोष से घबरायी मोदी सरकार ने इस मामले पर सोचना तो शुरू किया है। लेकिन उनके सोचने की दिशा रोज़गार पैदा करने के बारे में नहीं बल्कि कुछ और ही है। इसे समझने के लिए नीति आयोग के उपाध्यक्ष अरविंद पनगढ़िया का बयान आँखें खोलने वाला है, "नौकरियों पर हो रही बहस शून्य में हो रही है क्योंकि लेबर ब्यूरो के सर्वे के जिन तिमाही रोज़गार की स्थिति के आँकड़ों का ज़िक्र हो रहा है, उनमें गंभीर समस्या है।" नीति आयोग का कहना है कि खुद उनकी सरकार द्वारा जारी नौकरियों के आँकड़े भरोसे लायक ही नहीं हैं। पनगढ़िया ने यह भी कहा कि नीति आयोग जल्दी ही ऐसी पद्धति विकसित करने वाला है जिससे नौकरियों और रोज़गार के भरोसेमंद आँकड़े प्रस्तुत किये जायें

और इससे सिद्ध हो जायेगा कि भारत में 'रोज़गार विहीन वृद्धि' जैसी कोई स्थिति नहीं है। जाहिर है कि नीति आयोग नौकरियाँ कैसे बढ़ायी जायें इस पर विचार करने के बजाय इस जुगत में भिड़ा हुआ है कि आँकड़े जुटाने का ऐसा कोई तरीका कैसे निकाला जाये जो बताये कि देश में बेरोज़गारी की समस्या है ही नहीं और मोदी सरकार के दौर में नौकरियों की बहार आयी हुई है!

दरअसल, आर्थिक संकट के चक्र में घिरे पूँजीपति वर्ग के सामने एक ही रास्ता बचता है कि वह ज़्यादा पूँजी लगाकर नयी तकनीक लाये और उत्पादन में श्रम का हिस्सा कम करे। विश्वव्यापी मन्दी के दौर में पूँजीवादी अर्थशास्त्री यही उपाय लेकर आये कि पूँजी की लागत कम करो, जब संकट हो तो बाज़ार में और नरकदी लाओ, ब्याज दर कम करो। जापान में तो ब्याज खत्म ही हो गया और अमेरिका-यूरोप में केंद्रीय बैंकों ने खरबों डॉलर/यूरो वहाँ के पूँजीपतियों को लगभग शून्य ब्याज दर पर मुहैया कराये। खूब पूँजी लगाओ, तकनीक से श्रम पर खर्च कम करो। मगर इसका नतीजा क्सा होगा? और बेरोज़गारी, माँग में और कमी, यानी मुनाफ़ा फिर भी नहीं बढ़ता और संकट पहले से भी ज़्यादा तीखा हो जाता है।

भारत में भी यही चल रहा है। एक रिपोर्ट कहती है कि पिछले 35 साल में रोज़गार 2% से कम सालाना बढ़े हैं जबकि पूँजी का उपयोग सालाना 14% की दर से बढ़ा है। नतीजा प्रति फैक्ट्री श्रमिक 80 से घटकर 60 रह गए जबकि पूँजी 50 लाख से बढ़कर 10 करोड़ रुपये हो गयी क्योंकि जहाँ पहले पूँजी बढ़ाना श्रमिक बढ़ाने के मुकाबले महँगा पड़ता था, वहीं अब पूँजी बढ़ाना सस्ता पड़ता है। ऊपर से निजी क्षेत्र लगातार ब्याज दरें घटाने और नरकदी की उपलब्धता बढ़ाने का दबाव बनाये ही रहता है। हाल में भी रिजर्व बैंक ने ऐसे कुछ कदम उठाये हैं। इसलिए 'इकोनॉमिक टाइम्स' अखबार की रिपोर्ट साफ़ कहती है कि मोदी कुछ भी कहें, नये रोज़गार पैदा होने की बात भूल ही जाइये।

इसी माह, रिजर्व बैंक ने बैंकों को होम लोन देने के लिए ज़रूरी पूँजी की मात्रा को घटा दिया और कर्ज़ डूबने की स्थिति में नुकसान को झेलने की व्यवस्था के लिए रखी जाने वाली राशि को भी कम कर दिया। अब बैंक कम पूँजी रख कर ज़्यादा होम लोन दे सकते हैं अर्थात् ब्याज दर में थोड़ी और कमी करेंगे। 1990 के समय से आर्थिक वृद्धि के संकट से निपटने की यही नीति अमेरिकी फ़ेडरल रिजर्व ने अपनाई थी और 2001 के वित्तीय संकट के बाद तो बैंकों के लिए होम लोन देने की लागत बहुत ही कम कर दी थी। खूब होम लोन दिये गये, तो खूब मकान बनाये-खरीदे भी गए। इसके बल पर सबको अर्थव्यवस्था में तेज़ी दिखायी भी दी। मगर लिया हुआ कर्ज़ कभी तो चुकाना

ही पड़ता है, आमदनी के बगैर वह होता नहीं, और आमदनी रोज़गार के बिना नहीं बढ़ती। यह बात बड़ी सीधी सी है लेकिन प्रचार की चकाचौंध में अक्सर समझ में नहीं आती। अमेरिका में बैंकों का फुलाया बुलबुला 2008 में आकर फूटा जिसका खामियाजा दुनिया भर के गरीब लोगों ने भुगता, बुलबुला फुलाने वालों ने नहीं। अब जैसे-जैसे भारत की अर्थव्यवस्था में तेज़ी के प्रचार का बुलबुला फूट रहा है, होम लोन बढ़ाने की कवायद से और भी बड़ा, भयंकर बुलबुला फुलाये जाने की तैयारी हो रही है। यह बुलबुला भी फूटना तय है।

ऐसे में, पूँजीपति वर्ग के सामने उदार जनतंत्र का नाटक बन्द कर फासीवादी जुल्म और नमन लूट का रास्ता ही बच रहा है। प्रॉक्टर एंड गैम्बल कम्पनी के पूर्व सीईओ और भारतीय पूँजीपति वर्ग में चिंतक जैसी हैसियत रखने वाले गुरचरण दास ने हाल में टाइम्स ऑफ़ इंडिया में अपने एक लेख में लिखा कि मोदी दंगों, हत्याओं, साम्प्रदायिकता से जुड़े हैं, तानाशाह, प्रतिक्रियावादी हैं; पर सब कुछ के बावजूद आर्थिक तरक्की (पूँजीपतियों की तरक्की!) के लिए वही एकमात्र विकल्प हैं। यानी, आपको आर्थिक तरक्की चाहिए (जिसके फल ऊपर की 5-6 प्रतिशत आबादी को ही मिलेंगे) तो दंगों, दमन, लोगों के बीच नफ़रत और फूट के लिए तैयार रहिए।

पिछले तीन सालों में मोदी सरकार के कारनामे क्या रहे हैं? पब्लिक सेक्टर की मुनाफ़ा कमाने वाली कम्पनियों का निजीकरण किया गया है, जिसका अंजाम है बड़े पैमाने पर सरकारी कर्मचारियों की छंटनी। ठेका प्रथा को 'अप्रैप्टिस' जैसे नये नामों से बढ़ावा दिया गया है। पेट्रोलियम उत्पादों की अन्तरराष्ट्रीय कीमतें आधी से भी कम हो जाने के बावजूद मोदी सरकार ने तमाम टैक्स और शुल्क बढ़ाकर उसकी कीमतों को ज़्यादा नीचे नहीं आने दिया है। विदेशों से काला धन वापस लाने को लेकर तरह-तरह के बहाने बनाये जाते रहे हैं और देश में काला धन और बढ़ता ही रहा है। विदेशों में जमा काला धन की एक पाई भी नहीं आयी। नोटबन्दी से काले धन पर 'सर्जिकल स्ट्राइक' के जुमले की सच्चाई लोगों ने देख ली है। रुपये की कीमत में रिकार्ड गिरावट के चलते महँगाई और ज़्यादा बढ़ रही है। दूसरी तरफ़, अम्बानी, अदानी, बिड़ला, टाटा जैसे अपने आकाओं को मोदी सरकार एक के बाद एक तोहफ़े दे रही है। तमाम करों से छूट, लगभग मुफ़्त बिजली, पानी, ज़मीन, ब्याजरहित कर्ज़ और मज़दूरों को मनमाफिक ढंग से लूटने की छूट दी जा रही है। देश की प्राकृतिक सम्पदा और जनता के पैसे से खड़े किये सार्वजनिक उद्योगों को औने-पौने दामों पर उन्हें सौंपा जा रहा है। 'स्वदेशी', 'देशभक्ति', 'राष्ट्रवाद' का ढोल बजाते हुए सत्ता में आये मोदी ने अपनी सरकार बनने के साथ ही बीमा, रक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों समेत

तमाम क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को इजाज़त दे दी है। 'मेक इन इण्डिया' के सारे शोर-शराबे का अर्थ यही है कि "आओ दुनिया भर के मालिको, पूँजीपतियो और व्यापारियो! हमारे देश के सस्ते श्रम और प्राकृतिक संसाधनों को बेरोक-टोक जमकर लूटो!" "श्रम सुधरों" के नाम पर मज़दूरों के रहे-सहे अधिकार भी छीनने की तैयारी हो चुकी है। असंगठित मज़दूरों के अनुपात में और अधिक बढ़ोत्तरी हो रही है। बारह-चौदह घण्टे सपरिवार खटने के बावजूद मज़दूर परिवारों का जीना मुहाल है। औद्योगिक क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर मज़दूर असन्तोष बढ़ रहा है और जगह-जगह फूटते मज़दूर आन्दोलनों का दमन किया जा रहा है।

विश्वव्यापी मन्दी और आर्थिक संकट की जिस नयी प्रचण्ड लहर की भविष्यवाणी दुनिया भर के अर्थशास्त्री कर रहे हैं, उससे भारतीय अर्थतंत्र और भी गहरे संकट के भँवर में फँसेगा। महँगाई और बेरोज़गारी तब विकराल हो जायेगी। मोदी की तमाम धावा-धूपी और देशी-विदेशी लुटेरों के आगे पलक-पाँवड़े बिछाने की कोशिशों के बावजूद असलियत यह है कि निवेशक पूँजी लेकर आ ही नहीं रहे हैं। लगातार गहराती मन्दी के कारण विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के सारे सरगना खुद ही परेशान हैं। अति-उत्पादन के संकट के कारण दुनियाभर में उत्पादक गतिविधियाँ पहले ही धीमी पड़ रही हैं और तमाम उपायों के बावजूद बाज़ार में माँग उठ ही नहीं रही है, तो 'मेक इन इंडिया' करने के लिए पूँजी निवेशकों की लाइन कहाँ से लगने लगेगी? जो आयेगा भी, वह चाहेगा कि कम से कम लगाकर ज़्यादा से ज़्यादा निचेड़ ले जाये। मोदी यही लुकमा फेंकने की कोशिश करते रहे हैं कि किसी भी तरह आप पूँजी लगाओ तो सही, हम आपको यहाँ लूटमार मचाने की हर सुविधा की गारंटी करेंगे। पिछले वर्ष भारतीय पूँजीपतियों के संगठन एसोचैम ने कहा था कि निजी क्षेत्र में निवेश बढ़ने की सम्भावना ही कहाँ है जबकि बहुत से उद्योगों में पहले ही सिर्फ़ 30-40 प्रतिशत उत्पादन हो रहा है। अब तमाम पूँजीपति सरकार से खर्च बढ़ाने की गुहार लगा रहे हैं और सरकार जनता के ज़रूरी खर्चों में कटौती करके उनकी माँग पूरी भी कर रही है।

लुब्बेलुआब यह है कि आर्थिक संकट मोदी के तमाम लच्छेदार भाषणों की हवा निकालने में लगा हुआ है। ऐसे में लोगों का असन्तोष बढ़ना लाज़िमी है। भविष्य के "अनिष्ट संकेतों" को भाँपकर मोदी सरकार अभी से पुलिस तंत्र, अर्द्धसैनिक बलों और गुप्तचर तंत्र को चाक-चौबन्द बनाने पर सबसे अधिक बल दे रही है। मोदी के अच्छे दिनों के वायदे का बैलून जैसे-जैसे पिचककर नीचे उतरता जा रहा है, वैसे-वैसे हिन्दुत्व की राजनीति और साम्प्रदायिक तनाव एवं दंगों का

उन्मादी खेल जोर पकड़ता जा रहा है ताकि जन एकजुटता तोड़ी जा सके। अन्धराष्ट्रवादी जुनून पैदा करने पर भी पूरा जोर है। पाकिस्तान के साथ सीमित या व्यापक सीमा संघर्ष भी हो सकता है क्योंकि जनाक्रोश से आतंकित दोनों ही देशों के संकटग्रस्त शासक वर्गों को इससे राहत मिलेगी। मोदी सरकार की नीतियों ने उस ज्वालामुखी के दहाने की ओर भारतीय समाज के सरकते जाने की रफ़तार को काफ़ी तेज़ कर दिया है, जिस ओर घिसटने की यात्रा गत लगभग तीन दशकों से जारी है। भारतीय पूँजीवाद का आर्थिक संकट ढाँचागत है। यह पूरे सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर रहा है। बुर्जुआ जनवाद का राजनीतिक-संवैधानिक ढाँचा इसके दबाव से चरमरा रहा है। मोदी सरकार पाँच वर्षों के बाद लोगों के सामने अलफ़ नंगी खड़ी होगी। भारत को चीन और अमेरिका जैसा बनाने के सारे दावे हवा हो चुके रहेंगे। भक्तजनों को मुँह छुपाने को कोई अँधेरा कोना नहीं नसीब होगा। आम लोग "अच्छे दिनों" की असलियत को समझ रहे हैं और उनके भीतर नाराज़गी और गुस्सा बढ़ रहा है। यही कारण है कि आर.एस.एस. से जुड़े संगठनों द्वारा देशभर में साम्प्रदायिक तनाव भड़काया जा रहा है। गाय के नाम पर हत्याएँ की जा रही हैं। कुछ वर्षों में सारे भारत को हिन्दू बनाने का एलान किया जा रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान चाल-ढाल बता रही है कि आने वाले दिनों में इसका संकट और गहरायेगा। यह संकट भारत के मेहनतकश अवाम के लिए भी ढेरों मुसीबतें लेकर आयेगा। गरीबी, बेरोज़गारी, महँगाई में और अधिक इजाफ़ा होगा। भारत के मेहनतकशों को भी इस हालत का सामना करने के लिए अभी से तैयारी शुरू कर देनी होगी। आने वाले वर्षों में व्यवस्था के निरन्तर जारी असाध्य संकट का कुछ-कुछ अन्तराल के बाद सड़कों पर विस्फोट होता रहेगा। जब तक साम्राज्यवाद विरोधी- पूँजीवाद विरोधी सर्वहारा क्रान्ति की नयी हरावल शक्तियाँ नये सिरे से संगठित होकर एक नये भविष्य के निर्माण के लिए आगे नहीं आयेगी, देश अराजकता के भँवर में गोते लगाता रहेगा और पूँजीवाद का विकृत से विकृत, वीभत्स से वीभत्स, बर्बर से बर्बर चेहरा हमारे सामने आता रहेगा। ऐसे में हम तमाम मेहनतकश लोगों का आह्वान करते हैं कि 'अच्छे दिनों' के भ्रम से बाहर निकलो और आने वाले कठिन दिनों के संघर्षों के लिए खुद को तैयार करें।



बेहिसाब बढ़ती छँटनी और बेरोज़गारी

(पेज 1 से आगे)

है। 50% कर्मचारियों का कहना था कि उनकी कम्पनी में छँटनी की बात चल रही है। 62% का यह भी कहना था कि नौकरियों की संख्या आगे सिकुड़ती ही जायेगी। 52% कर्मचारियों का यह भी मानना था कि छँटनी का एकमात्र कारण सिर्फ़ नयी तकनीक का प्रयोग ही नहीं बल्कि उनके कार्यक्षेत्र में आर्थिक संकट भी है। उदाहरण के लिए, स्टार्ट अप क्षेत्र के कर्मचारियों के अनुसार डिजिटल तकनीक से भी ज्यादा निवेश के लिए धन का अभाव नौकरियों को खा जाने वाला है। सिर्फ़ 35% कर्मचारी ही डिजिटल तकनीक को अपनी नौकरी के लिए मुख्य खतरा मानते हैं।

छँटनी का यह संकट अर्थव्यवस्था के किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। इंजीनियरिंग क्षेत्र की प्रमुख कम्पनी लार्सन एण्ड टुब्रो अपने 11% अर्थात् 14 हजार कर्मचारियों को निकाल चुकी है। सबसे सशक्त माने जाने वाला एचडीएफसी बैंक भी पिछली 2 तिमाहियों में 11 हजार कर्मचारियों को निकाल चुका है। एक और बड़ी कम्पनी टाटा मोटर्स ने भी हजारों कम्पनियों को निकाला है। मोदी सरकार द्वारा रोज़गार सृजन का मुख्य स्रोत बताये जाने वाले स्टार्ट अप क्षेत्र में फ़्लिपकार्ट, स्नैपडील से लेकर तमाम कम्पनियों से बड़ी तादाद में नौकरियों में कमी हुई है। लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था के ग्लैमरस क्षेत्र सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र की कॉमिजेंट, इनफ़ोसिस, विप्रो, आदि कम्पनियों में होने वाली भारी छँटनी की खबरों ने इस मुद्दे को ज़ोरों से चर्चा में ला दिया है। एनडीटीवी प्रॉफ़िट द्वारा प्रकाशित नौकरी डॉट कॉम के सर्वे के मुताबिक़ मई 2017 में पिछले साल के मुकाबले भर्ती की संख्या में 4% की गिरावट है जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी और बीपीओ क्षेत्र की गिरावट सबसे अधिक है। साथ ही हर अनुभव-उम्र वालों और हर स्तर के कर्मचारियों की भर्ती में कमी आयी है और यह स्थिति अभी आगे भी जारी रहने वाली है।

लेकिन यह प्रक्रिया तो पिछले कई सालों से ही चल रही थी। खुद सरकारी लेबर ब्यूरो के तिमाही सर्वे द्वारा जारी आँकड़े यह बहुत पहले से बता रहे थे कि नयी नौकरियों की तादाद लगातार घट रही थी और मोदी के 2 करोड़ प्रति वर्ष नयी नौकरियों के सृजन के वादे के मुकाबले एक-दो लाख की संख्या पर आ पहुँची थी। पर सरकार द्वारा नवम्बर 2016 में की गयी नोटबन्दी ने रोज़गार

के इस संकट को एक महाविनाश में बदल दिया। पहले ही नये निवेश की कमी और क्षमता से कम उत्पादन से जूझ रही अर्थव्यवस्था में इस ज़बरदस्ती पैदा किये गये तरलता या नक़दी की उपलब्धता में कमी ने कारोबार के पूरे चक्र अर्थात् खरीद, उत्पादन और बिक्री को बाधित कर दिया। इससे बहुत सारे, खास तौर पर छोटे-मध्यम कारोबार या तो बन्द या कम सक्रिय हो गये और उन्होंने अपनी सक्रियता के स्तर से ज्यादा श्रमिकों को नौकरियों से बाहर कर दिया। निर्माण और उद्योग के बड़ी संख्या में रोज़गार देने वाले क्षेत्रों में इसका खास तौर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा और कुछ विश्लेषकों के अनुसार लगभग एक करोड़ श्रमिकों को इससे स्थाई या अस्थायी बेरोज़गारी का सामना करना पड़ा और इनमें से बहुतों को अभी भी वापस कोई रोज़गार नहीं मिला है।

पर नौकरियों पर यह संकट सिर्फ़ निजी क्षेत्र में ही नहीं है। खुद मोदी सरकार के नियन्त्रण वाली सरकारी नौकरियों में भी यही स्थिति है। सरकारी नौकरियों में भर्ती पिछले 3 साल में 89% घटी है। फिर भर्ती न करने की वजह से खाली पड़े 2 लाख पदों को अब सरकार ने यह कहकर समाप्त कर दिया है कि इतने दिनों से काम चल रहा है तो इन पदों पर भर्ती की कोई ज़रूरत ही नहीं है। इसी तरह रेलवे में भी 20 हजार पद समाप्त कर दिये गये। अन्य सार्वजनिक ईकाइयों की भी यही स्थिति है। सरकारी बैंकों को आपस में विलय कर बैंकों को कम किया जा रहा है और इसके बाद इनकी कई हजार शाखाएँ बन्द की जानी हैं इसलिए वहाँ भी नयी नौकरियों की तादाद बहुत कम हो जाने वाली है। साथ ही वर्तमान कर्मचारियों को भी स्वेच्छिक रिटायरमेंट का प्रस्ताव दिया जा रहा है।

रोज़गार सृजन में भारी गिरावट और नौकरियों की कमी पर होने वाली आलोचना के बाद अब नरेन्द्र मोदी सरकार ने इस पर सोचना तो शुरू किया है। लेकिन उनके सोचने की दिशा रोज़गार सृजन के उपाय नहीं कुछ और ही है। इसे समझने के लिए नीति आयोग के उपाध्यक्ष अरविन्द पनगढ़िया का बयान आँखें खोलने वाला है, "नौकरियों पर हो रही बहस शून्य में हो रही है क्योंकि लेबर ब्यूरो के सर्वे के जिन तिमाही रोज़गार की स्थिति के आँकड़ों का जिक्र हो रहा है, उनमें गम्भीर समस्या है।" नीति आयोग का कहना है कि खुद उनकी सरकार द्वारा जारी नौकरियों के आँकड़े भरोसे

लायक़ ही नहीं हैं। पनगढ़िया ने यह भी कहा कि नीति आयोग जल्दी ही ऐसी पद्धति विकसित करने वाला है जिससे नौकरियों और रोज़गार के भरोसेमन्द आँकड़े प्रस्तुत किये जायें और इससे सिद्ध हो जायेगा कि भारत में 'रोज़गार विहीन वृद्धि' जैसी कोई स्थिति नहीं है! ज़ाहिर है कि नीति आयोग नौकरियाँ कैसे बढ़ाई जायें, इस पर विचार करने के बजाय इस पर विचार करने में जुटा है कि आँकड़े जुटाने का ऐसा कोई तरीका कैसे ईजाद किया जाये जो बताये कि देश में बेरोज़गारी की समस्या है ही नहीं और मोदी सरकार के दौर में नौकरियों की बहार आयी हुई है! (इकोनॉमिक टाइम्स, 14 जून 2017)

मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था के विश्लेषण में यह दिखाया था कि अपने प्रतियोगियों को पीछे छोड़ने और ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की चाहत पूँजीपतियों को निरन्तर नयी तकनीकों व प्रौद्योगिकी में निवेश करने पर मजबूर करती है, क्योंकि काम के घण्टे बढ़ाकर या काम की गति तेज़ करके मुनाफ़ा बढ़ाने की अपनी एक सीमा होती है। नयी प्रौद्योगिकी में निवेश करने से उत्पादकता में बढ़ोतरी होती है और थोड़े समय के लिए मुनाफ़े में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार पूँजीपतियों की स्थिर पूँजी (मशीनरी, तकनीक, कच्चा माल आदि) परिवर्तनशील पूँजी (श्रमशक्ति) की तुलना में बढ़ जाती है जिसकी वजह से पूँजी का जैविक संघटन (स्थिर पूँजी व परिवर्तनशील पूँजी का अनुपात) बढ़ जाता है। श्रम की तुलना में पूँजी के पक्ष में आये इस झुकाव का अन्तर्विरोधी परिणाम दीर्घावधि में मुनाफ़े की दर में आयी कमी के रूप में सामने आता है, क्योंकि श्रमशक्ति ही मूल्य का स्रोत होती है। मार्क्स ने इसे मुनाफ़े की दर में होने वाली कमी की प्रवृत्ति की संज्ञा दी थी जो पूँजीवाद में अन्तर्निहित है।

8 जून को इकोनॉमिक टाइम्स में प्रकाशित रिपोर्ट मार्क्स के उपर्युक्त सिद्धान्त की पुष्टि करती है कि आर्थिक संकट के चक्र में घिरे पूँजीपति वर्ग के सामने एक ही रास्ता बचता है कि वह ज़्यादा पूँजी लगाकर नयी तकनीक लाये और उत्पादन में श्रमशक्ति का हिस्सा कम करे। इसके लिए ही नवउदारवादी अर्थशास्त्री यह सिद्धान्त लेकर आये कि पूँजी की लागत कम होने से आर्थिक वृद्धि होती है। इसलिए जब भी आर्थिक संकट हो केन्द्रीय बैंकों द्वारा बाज़ार में और नक़दी लाओ, ब्याज़ दर को कम करो, जिससे पूँजीपति सस्ती ब्याज़ दरों

पर पूँजी जुटाकर निवेश कर सकें। जापान में तो ब्याज़ ख़त्म ही हो गया है और अमेरिका-यूरोप में ब्याज़ दर लगभग शून्य के पास पहुँच गयी है, इस दर पर वहाँ के केन्द्रीय बैंकों ने खरबों डॉलर/यूरो वहाँ के पूँजीपतियों को मुहैया कराये - ख़ूब पूँजी लगाओ, नयी तकनीक से श्रमशक्ति पर होने वाला खर्च कम करो अर्थात् श्रमिकों की संख्या कम करो। नतीजा, और बेरोज़गारी, बाज़ार में माँग में और कमी।

भारत में भी इस वक्रत यही चल रहा है। एक रिपोर्ट कहती है कि पिछले 35 साल में रोज़गार 2% से कम सालाना बढ़े हैं, जबकि पूँजी का उपयोग सालाना 14% की दर से बढ़ा है। नतीजा बड़े उद्योगों में भी प्रति फ़ैक्टरी श्रमिक 80 से घटकर 60 ही रह गये जबकि प्रति फ़ैक्टरी पूँजी औसतन 50 लाख से बढ़कर 10 करोड़ रुपये हो गयी, क्योंकि जहाँ पहले पूँजी बढ़ाना श्रमिक बढ़ाने से महँगा पड़ता था, अब पूँजी बढ़ाना सस्ता पड़ता है। ऊपर से निजी क्षेत्र लगातार ब्याज़ दरें घटाने और नक़दी तरलता (उपलब्धता) बढ़ाने का दबाव बनाये ही रहता है, 7 जून को मौद्रिक नीति की समीक्षा में भी रिज़र्व बैंक ने ऐसे ही कुछ क़दम उठाये। इसलिए इकोनॉमिक टाइम्स की रिपोर्ट साफ़ कहती है कि मोदी कुछ भी कहते रहें, नये रोज़गार सृजन को भूल ही जाइये। पर यह सब करने के बाद भी पूँजीवादी व्यवस्था में इस संकट का कोई समाधान नहीं है। लेकिन समस्या है मुनाफ़ा फिर भी नहीं बढ़ता तथा संकट और तीव्र होता जाता है। मिण्ट की 8 जून की ही एक रिपोर्ट के अनुसार कम्पनियों का प्रति शेयर मुनाफ़ा बढ़ नहीं रहा है। अर्थव्यवस्था में तेज़ी की उम्मीद में शेयर बाज़ार तो चढ़ रहा है लेकिन असल में मुनाफ़ा नहीं बढ़ रहा! मतलब इस संकट से बाहर निकलने का कोई उपाय सामने नहीं है।

यही वजह है कि जैसे-जैसे छँटनी और बेरोज़गारी के काले बादल भारत के उद्योग, आईटी सेक्टर व अर्थव्यवस्था के अन्य सेक्टरों पर मँडराते जा रहे हैं, वैसे-वैसे शासक वर्ग के बुद्धिजीवी और प्रचार माध्यम हमें यह समझाने में अपनी पूरी बौद्धिक ऊर्जा झोंक रहे हैं कि ऐसी गम्भीर परिस्थिति के लिए मुख्य रूप से रोबोट तथा स्वचालन की अन्य प्रौद्योगिकी जिम्मेदार हैं। यह सही है कि कई तकनीकों में हाल में हुई खोजों में उत्पादन की प्रक्रिया में रूपान्तरण की सम्भावना निहित है जिसके

परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोग उत्पादन व्यवस्था से बाहर हो जायेंगे क्योंकि उनके वर्तमान कौशल की अब कोई ज़रूरत नहीं रह जायेगी। परन्तु यथार्थ के इस पहलू पर ज़ोर देते समय अक्सर यह सच्चाई पर्दे के पीछे छिपा दी जाती है कि ऐसा केवल पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के तहत होता है कि ऑटोमेशन की वजह से लोगों की आजीविका ख़तरे में पड़ जाती है। इसका असल कारण है कि आवश्यकताओं की पूर्ति न होते हुए भी क्रय क्षमता के अभाव में लोग उत्पादों को खरीद नहीं पाते और पूँजीवाद में एक कृत्रिम अतिउत्पादन का संकट पैदा हो जाता है अर्थात् बाज़ार में माँग से अधिक उत्पादन। इसलिए उत्पादन के विस्तार में असमर्थ पूँजीवाद अपने मुनाफ़े के लिए ऑटोमेशन द्वारा छँटनी का रास्ता ही अपनाता है। जबकि उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व की समाजवादी व्यवस्था में सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के मक़सद से उत्पादन के लिए एक और तो नयी तकनीकों का प्रयोग उत्पादन के विस्तार हेतु किया जा सकता है, दूसरी और काम के घण्टे कम कर लोगों का जीवन और उनकी आजीविका कठिन होने की बजाय पहले से सुगम करने के लिए। ऐसी व्यवस्था में न सिर्फ़ सभी काम चाहने वालों हेतु रोज़गार होगा, बल्कि सबके लिए काम करना भी अनिवार्य करना होगा, निठल्ले बैठकर खाना नहीं।

इसलिए जहाँ निश्चित रूप से ही मज़दूरों को पूँजी के इस हालिया हमले के खिलाफ़ एकजुट होकर अपनी नौकरी की सुरक्षा की माँग उठाने की ज़रूरत है वहीं यह भी ध्यान में रखना होगा कि जब तक कि उत्पादन के साधनों पर समाज के मुट्ठी भर परजीवियों का क़ब्ज़ा है, प्रौद्योगिकी में आयी किसी भी प्रगति का लाभ मुख्य तौर पर समाज की बहुत छोटी सी आबादी को होगा, जबकि समाज की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी की जिन्दगी की तकलीफ़ें बढ़ती ही जायेंगी। इसलिए मेहनतकश आबादी को एकजुट होकर इस शोषणकारी व्यवस्था को उखाड़ फेंककर उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व की ऐसी व्यवस्था के निर्माण की ज़रूरत है जिसमें तकनीक व प्रौद्योगिकी में आयी किसी भी प्रगति का इस्तेमाल उत्पादन को और विस्तृत तथा श्रमिकों के काम के घण्टों में कमी करने में किया जा सके।

मज़दूर का अलगाव

(पेज 13 से आगे)

रिहाइश और कपड़े पहनने आदि में अपने को आज़ादी से काम करते हुए महसूस करता है; और अपनी मानवीय क्रियाओं में वह अपने को एक पशु से ज़्यादा कुछ नहीं महसूस करता। जो पशुवत है, वह मानवीय हो जाता है और जो कुछ मानवीय है, वह पशुवत बन जाता है।

निश्चित रूप से, खाना, पीना, बच्चे पैदा करना आदि भी वास्तविक मानवीय क्रियाएँ हैं, लेकिन अमूर्त तौर पर, अन्य सभी मानवीय क्रियाकलाप के दायरे से अलग करके देखने पर, और एकमात्र तथा अन्तिम लक्ष्यों में बदल देने पर, वे पशुवत क्रियाएँ होती हैं।

हमने मनुष्य की व्यावहारिक गतिविधि, श्रम, के अलगाव की क्रिया

के दो पहलुओं पर विचार किया है। (1) श्रम के उत्पाद के साथ मज़दूर का ऐसा सम्बन्ध जिसमें उत्पाद उसके ऊपर नियन्त्रण करने वाली एक बेगानी शक्ति होती है। साथ ही, यह सम्बन्ध ऐन्द्रिक बाहरी जगत के साथ, प्रकृति की वस्तुओं के साथ भी उसका सम्बन्ध होता है, एक ऐसे पराये जगत के रूप में जो शत्रुतापूर्ण ढंग से उसका विरोधी है। (2) श्रम

प्रक्रिया के भीतर उत्पादन की क्रिया के साथ श्रम का सम्बन्ध। यह सम्बन्ध एक ऐसी गतिविधि के रूप में अपनी खुद की गतिविधि के साथ मज़दूर का सम्बन्ध है जो एक परायी गतिविधि है जिस पर उसका कोई हक़ नहीं है; इसमें गतिविधि का मतलब है दुख-तकलीफ़, ताक़त का मतलब है कमज़ोरी, सृजन का मतलब है पुंसत्वहीन होना, मज़दूर की अपनी

शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का नाश होना, उसके निजी जीवन - क्योंकि गतिविधि ही तो जीवन है - का एक ऐसी गतिविधि में बदल जाना जो उसके खिलाफ़ है, उससे स्वतन्त्र है और जिस पर उसका अधिकार नहीं है। यहाँ हमारे सामने है अपनेआप से अलगाव, जैसे पहले हमने देखा था वस्तु का अलगाव।

अनुवाद : सत्यम

अफ्रीका में 'आतंकवाद के खिलाफ युद्ध' की आड़ में प्राकृतिक खज़ानों को हड़पने की साम्राज्यवादी मुहिम

— डॉ. सुखदेव हुन्दल

अफ्रीका महाद्वीप के कई देशों में अकाल और भुखमरी की हालत बनी हुई है। सूडान में अकाल से होने वाली मौतों की दिल कँपाने वाली खबरें टेलीविज़न पर आ रही हैं। सूडान, सोमालिया, इथोपिया और मलावी सहित लगभग सारे ही उप-सहारा क्षेत्र में साधारण जनता के लिए भुखमरी की हालत बनी हुई है। इस क्षेत्र का प्राकृतिक दौलत से भरपूर होना ही यहाँ के गरीब लोगों के लिए सज़ा बन गया है। विश्व पूँजीवाद के राक्षस के हाथ हर उस जगह तक पहुँच जाते हैं जहाँ भी इन्हें मुनाफ़े की सम्भावना नज़र आती है। लाखों करोड़ों की संख्या में मेहनतकश जनता को मौत के मुँह में धकेल कर ऐतिहासिक तौर पर मरने के करीब पहुँची पूँजीवादी व्यवस्था को जीवित रखने का इन्तज़ाम किया जाता है।

अलजज़ीरा चैनल की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिकी खुफ़िया एजेंसी सी.आई.ए. की फ़ैक्टबुक में नोट किया गया है कि-

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मामले में अफ्रीका विश्व का सबसे तेज़ी से विकास करने वाला क्षेत्र है।

2036 तक, अफ्रीकी तेल और गैस में लगभग 20 खरब डॉलर के निवेश की सम्भावनाएँ हैं।

2050 तक अफ्रीका महाद्वीप की आबादी दोगुनी (2 अरब 30 करोड़ से अधिक) हो जायेगी।

विश्व के बचे हुए खनिज पदार्थों के लगभग 30 फीसदी स्रोत अफ्रीका में हैं।

एक और रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की सबसे तेज़ विकास कर रही 10 अर्थव्यवस्थाओं में से 6 अफ्रीका के उप-सहारा क्षेत्र में आती हैं। तेल और गैस के विशाल भण्डारों के अलावा, परमाणु खनिज, कोल्टन, तांबे और सोने जैसी धातुओं के विशाल भण्डारों से भी यह अभाग्य धरती मालामाल है।

पूँजीवाद के उभार के दौर में इस महाद्वीप की भोली-भाली मेहनतकश जनता को गुलाम बना कर पशुओं की तरह समुद्री जहाज़ों में लाद कर यूरोप और अमेरिका की मण्डलों में बेचा जाता था। अमेरिकी इतिहासकार एस.के. पैडोवर लिखते हैं कि मशीनरी और क्रेडिट आदि की तरह ही सीधी गुलामी हमारे औद्योगिकीकरण की धुरी है। गुलामी के बिना आपके पास कपास और कपास के बिना आपका आधुनिक उद्योग नहीं खड़ा हो सकता। गुलामी व्यवस्था ने ही उपनिवेशों को सम्भव बनाया, और उपनिवेशों ने जिन्होंने विश्व व्यापार को जन्म दिया। विश्व व्यापार बड़े स्तर के मशीनी उद्योग की ज़रूरत है। मज़दूर वर्ग के शिक्षक कार्ल मार्क्स ने भी, अफ्रीका की मेहनतकश जनता को गुलाम बनाकर, पूँजीवादी उद्योग में, स्थिर मानवीय पूँजी के तौर पर उपयोग करने का अमानवीय कारनामों का ज़िक्र किया है। उन्होंने अमेरिकी गृह युद्ध के समय अमेरिका के मज़दूर वर्ग को अपने सबसे नज़दीकी साथी गुलाम मज़दूरों की मुक्ति के लिए

लड़ने का आह्वान किया था। अपने जन्म के समय से ही सिर से पैरों तक खून से लथपथ पूँजीवाद का इतिहास अपने इस अन्तिम दौर में और भी बदहवास और खूँखार हो गया है। साम्राज्यवादी पूँजी के इस दौर में इसके दिल की धड़कन को चलता रखने के लिए अनिवार्य शर्त है कि इसके लिए दुनियाभर के मेहनतकशों के खून की सप्लाई बनी रहे। दूसरी ओर, पूँजीवादी व्यवस्था के संचालक अपने अमानवीय, हिंसक और निर्मम कारनामों को हमेशा ही बड़े साफ सुथरे पवित्र और जनकल्याण के कार्यों के रूप में प्रचारित करते रहे हैं। उपनिवेशिक दौर में उनका नारा था कि वे असभ्य राष्ट्रों और जातियों को सभ्य बनाने के पवित्र मिशन के तहत उन्हें गुलाम बना रहे हैं। जबकि असली मकसद कच्चे माल और सस्ते श्रम की लूट थी और साथ ही अपना तैयार माल बेचने के लिए बाजारों की खोज थी।

1917 की महान अक्तूबर क्रान्ति से विश्व में, मज़दूर वर्ग के किले के रूप में समाजवादी पक्ष अस्तित्व में आ गया। दुनिया में से कम्युनिज़्म को बढ़ाने से रोकने और उसे खत्म करने का "पवित्र" मिशन विश्व पूँजीवाद का नया नारा बन गया। साम्राज्यवादी प्रचार माध्यम, समाजवाद के विरुद्ध कुत्सा प्रचार पर करोड़ों डॉलर खर्च करने लग गये। समाजवादी देशों और कम्युनिज़्म के बढ़ते असर को खतरे के रूप में पेश किया जाता था। पूँजीवादी देशों में उन देशों के मज़दूरों और मेहनतकश जनता को गुमराह करने के लिए बड़े स्तर पर प्रचार किया जाता था। अमेरिका में बदनाम 'मैकार्थी' के दौर में समाजवाद के समर्थक बुद्धिजीवियों पर बड़े स्तर पर ज़ुलम किये गये।

1956 तक समाजवादी सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी। इस दौर में साम्राज्यवादी देशों की कलह कई रूपों में चलती रही। सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद और अमेरिका के नेतृत्व वाले साम्राज्यवादी गुट की टक्कर के इस दौर को शीत युद्ध के दौर के तौर पर जाना जाता है। साम्राज्यवाद ने दुनिया भर में अपने दबाव को कायम रखने के लिए साज़िशाना गतिविधियों की सारी हदें पार कर दीं। अमेरिका के नेतृत्व वाले साम्राज्यवादी गुट ने सी.आई.ए. जैसी खुफ़िया एजेंसियों को सक्रिय करके नये आज़ाद हुए देशों में कठपुतली हुकूमतें कायम करने, सत्ता परिवर्तन और कत्लों के सिलसिले को चलाते हुए, दुनिया भर में बेहद प्रतिक्रान्तिकारी और कट्टरपंथी ताकतों को हवा दी। वर्तमान समय में, विश्व के भिन्न-भिन्न हिस्सों में सक्रिय धार्मिक कट्टरपंथी आतंकी टोलियों को खड़ा करने में इस दौर में दिये गये साम्राज्यवादियों के सैन्य प्रशिक्षण और वित्तीय सहायता की बहुत बड़ी भूमिका रही है। हालाँकि, हर क्षेत्र में आतंक के पैदा होने के बुनियादी कारण, वहाँ की भीतरी परिस्थितियों पर भी निर्भर होते हैं। अरब देशों के तेल भण्डारों को हड़पने के लिए और अफ़ग़ानिस्तान से सोवियत-परस्त गुट की हुकूमत को खत्म करने के

मकसद से, अमेरिका ने, तालिबान और अल-कायदा जैसे आतंकी गिरोहों को हथियार, प्रशिक्षण और तमाम तरह की वित्तीय सहायता देकर मज़बूत किया।

बीसवीं सदी के अन्त तक आते-आते बहुत कुछ बदल गया। पहली बड़ी महामन्दी के बाद, पूँजीवादी व्यवस्था के लिए ऐतिहासिक राहत के रूप में सामने आया कीन्ज़ के कल्याणकारी राज्य वाला नुस्खा बेअसर होने लगा। इसकी सारी सम्भावनाएँ चुक गयी थीं। दूसरी ओर 1976 में माओ माओ त्से-तुंग की मौत के बाद मज़दूर वर्ग का आखिरी किला चीन भी पूँजीपतियों के हाथों में आ चुका था। 1992 तक, तथाकथित समाजवादी गुट जो वास्तव में, सोवियत संघ के नेतृत्व में सामाजिक साम्राज्यवादी गुट था वो भी मुक्त बाज़ार की राह चल चुका था। 21वीं सदी के शुरु से ही विश्वीकरण के दौर की विश्व अर्थव्यवस्था न हल होने वाले पूँजीवादी संकट के दौर में दाखिल हो गई। अब विश्व पूँजीवाद के दुनिया के कल्याण के पुराने नारों की पोल पूरी तरह खुल चुकी थी।

दूसरी ओर संकट इतना गम्भीर होता जा रहा था कि मेहनतकश जनता के श्रम की नंगी-सफेद लूट और दुनिया भर के प्राकृतिक स्रोतों पर कब्ज़ा, पूँजीवादी व्यवस्था को जीवित रखने के लिए अनिवार्य शर्त बन गया था। लेकिन हुक्मरान वर्ग तो हमेशा "जनकल्याण" और "मानवीयता की सेवा" करने के ऊँचे आसन पर विराजमान रहते हैं। हमेशा की तरह ही एक नया मुखौटा पहन लिया ताकि अपने कुकर्मों और खूनी चेहरे को छिपाया जा सके। इस बार मानवीय नज़र आने वाले इस मुखौटे पर लिखा है 'आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध'। आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध के "पवित्र" कार्य के नारे तले विश्व स्तर पर धर्म, जाति और राष्ट्र आदि के नामों की पहचान आदि को हवा देकर अन्ध-राष्ट्रवाद और फासीवाद का उन्माद फैलाया जा रहा है। एशिया, लातिनी अमेरिका और अफ्रीका के पूँजीपति हुक्मरान वर्ग साम्राज्यवादी पूँजी के छोटे भागीदार बनने के लिए जोड़-तोड़ में व्यस्त हैं। इसका यह मतलब यह नहीं है कि पूँजीवादी विश्व में शत्रुताएँ खत्म हो गई हैं या बिल्कुल डीली पड़ गई हैं। वास्तव में इस व्यवस्था में प्रत्येक एक दूसरे के दुश्मन हैं।

इस संदर्भ में सहारा क्षेत्र में, आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध के छिपे मकसद को समझा जा सकता है। ऐसा लगता है कि यह क्षेत्र 21वीं सदी में प्राकृतिक स्रोतों के लिए होने वाले युद्ध का मुख्य अखाड़ा बन गया है। पीछे मुड़ कर देखें तो 1885 में, बर्लिन सम्मेलन में, ब्रिटेन, बेल्जियम, पुर्तगाल, स्पेन, जर्मनी, इटली और फ्रांस ने आपस में इस क्षेत्र का बँटवारा कर लिया था। फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों ने पश्चिमी और उत्तरी अफ्रीका में अपनी पकड़ मज़बूत कर ली थी। 20वीं सदी के मध्य में उपनिवेशवाद विरोधी मुक्ति जनान्दोलनों के उभार के समय में फ्रांस के हाथों से ज़्यादातर

उपनिवेश छिन गये थे। लेकिन फिर भी उपनिवेशवादी दखलन्दाजी बन्द नहीं हुई। अपने पूर्व उपनिवेशों फौजी अड्डे स्थापित करके तथा कई और तरीकों से अफ्रीकी जनता और यहाँ के प्राकृतिक स्रोतों की लूट जारी रही। फ्रांस यूरोपीय हितों के रखवाले के तौर पर अफ्रीकी जनता का पुलिसिया बना हुआ था।

1960 में, गिनी की खाड़ी में तेल के विशाल भण्डारों का पता लगने पर शीत युद्ध के साम्राज्यवादी विश्व के सबसे बड़े सरगना अमेरिका को अफ्रीकी जनता के हितों की चिन्ता सताने लगी। अमेरिका ने इस क्षेत्र में आर्थिक और सैन्य निवेश बढ़ा दिया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, साम्राज्यवादी पूँजी के सैन्य और वित्तीय निकायों ने इन देशों में भयानक तबाही और कंगाली को जन्म दिया। जनता की बेचैनी और विद्रोह के कारण बड़े हिस्से में गृह युद्ध जैसे हालत बनते रहे। अकाल, भुखमरी और गृह युद्ध जैसी त्रासदियों से छुटकारा दिलाने के बहाने साम्राज्यवादी देश फिर मसीहा बन कर हाज़िर होते हैं। 1992 में मानवता के आधार पर अमेरिका ने, 'हार्न ऑफ अफ्रीका' में फौजी दखल दिया। सोमालिया के गृह युद्ध के खात्मे के बहाने 28,000 सैनिक इस देश में दाखिल हुए।

2001 में 'विश्व व्यापार केन्द्र' पर हमले के बाद अमेरिका और उसके सहयोगियों का घोषित मिशन आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध हो गया। इसी वर्ष अमेरिका की इस क्षेत्र में सैन्य अड्डे कायम करने की योजना ने रफ्तार पकड़ ली। इसने अपना पहला सैन्य अड्डा जिबूती में बनाया। अमेरिकी रक्षा विभाग ने दुनिया में अपने हथियारबन्द दस्तों की तैनाती और इसके संचालन के लिए, मिल्ट्री कमान के 6 बड़े विभाग बनाये हैं। अमेरिका के सुरक्षा हितों के नाम पर, दूसरे मुल्कों में, यह नंगी दखलन्दाजी है। वास्तव में यह विश्व पूँजी के हितों की पहरेदारी है। इनमें से ही एक है एफ्रीकोम है यानी कि अफ्रीकी कमान जो इस क्षेत्र के लगभग 53 देशों पर निगाह रखती है। भारी जन विरोध के डर से इसका मुख्यालय जर्मनी में है। इस क्षेत्र के ही एक और देश 'माली' से भी सी.आई.ए. की गतिविधियों को संचालित किया जाता है। अलजज़ीरा की एक रिपोर्ट के अनुसार, सी.आई.ए. के एक अधिकारी रुडोल्फ अतालहा (जो अफ्रीका में, अमेरिकन रक्षा विभाग के आतंकवाद विरोधी शाखा का डायरेक्टर है) का कहना है कि 'साहेल' का इलाका, हथियारों, विदेशी लड़ाकू हवाई जहाज़ों की गतिविधियाँ और जन अपराधों की घटनाओं पर निगाह रखने के लिए केन्द्रीय महत्व रखता है। 'साहेल' अर्ध-खुशक मौसम वाला चरागाही इलाका है जिसके उत्तर की ओर सहारा रेगिस्तान और दक्षिण की ओर अधिक नमी वाली चरागाहों वाला सूडानी क्षेत्र है। इसे भूगोलिक तौर पर सूडानी क्षेत्र कहा जाता है, सूडान देश के अर्थ में नहीं। सैनेगल, मौरितानिया, माली, बुरकीना फासो, अलजीरिया, नाईगर, नाइजीरिया,

चैड, सूडान, इरीट्रिया, कैमरून, मध्य अफ्रीकी गणराज्य और इथोपिया इस क्षेत्र के देश हैं। अफ्रीकी देशों में, एक और मुख्य नेता, लीबिया के पूर्व राष्ट्रपति कर्नल गदाफ़ी को, एफ्रीकोम के सैन्य और आर्थिक दखलन्दाजी के विरुद्ध खड़े होने के कारण, पूर्व अमेरिकन राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने उसे 'मध्य-पूर्व का पागल कुत्ता' कहा था। 2011 के अरब विद्रोह के दौर में पैदा हुए हालात का लाभ उठाते हुए, एफ्रीकोम ने कर्नल गदाफ़ी का तख्ता पलट करवा दिया। अफरा-तफरी के उस दौर में, क्रान्तिकारी विकल्प की गैरमौजूदगी के कारण, इस्लामिक कट्टरपंथियों के उभार से, उत्तरी माली में एक कट्टरपंथी इस्लामिक राज्य अस्तित्व में आ गया। कुछ हफ्तों में ही, फ्रांसीसी फौजों की कार्रवाई से इस राज्य का खात्मा कर दिया गया। फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने, आतंकवाद से सामना करने के नाम पर, 'माली' के मुक्तिदाता के तौर पर अपनी पीठ थपथपाई। तेल और प्राकृतिक स्रोतों से भरपूर इस क्षेत्र की लूट के लिए अमेरिका और चीन सहित सारे साम्राज्यवादी देशों के हित उनके एजेंडे पर आ गये हैं।

इन देशों में, ड्रोन बेस बनाने, फौजी अड्डे कायम करने और महाद्वीप के सैन्यकरण में लगातार वृद्धि के बाद, सैन्य-औद्योगिक गँठजोड़ के मुनाफों के अलावा, स्थानीय निजी ठेकेदारों के साथ गठजोड़ करके, करोड़ों लोगों की तबाही की कीमत पर विश्व पूँजीवाद अपने को बर्बादी से बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है। तेल, गैस, और प्राकृतिक खनिजों के अलावा रेगिस्तानी रेत के नीचे मौजूद पानी को हड़पने की योजनाओं पर भी चर्चा हो रही है। 6 मई 2014 को बराक ओबामा ने जिबूती के राष्ट्रपति के साथ इस देश में सैन्य अड्डा स्थापित करने का समझौता किया। अल-कायदा, अल-शाबाब और बोको-हरम जैसे आतंकवादियों के विरुद्ध कार्रवाई के नाम पर स्थानीय हुकूमतों द्वारा मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन नज़रअन्दाज़ किया ला रहा है। अफ्रीकी हुक्मरानों और साम्राज्यवादी हुक्मरानों के समझौते, बहुसंख्यक अफ्रीकी मेहनतकश जनता के हितों के विरुद्ध हैं। अभिव्यक्ति की आज़ादी पर पाबन्दियाँ दिनों-दिन बढ़ रही हैं। इरीट्रिया के बाद इथोपिया, पत्रकारों की सबसे बड़ी जेल बन गया है।

अफ्रीका सहित दुनिया भर के मज़दूरों और मेहनतकश जनता को, बाहर से दिखती और प्रचारित की जाती घटनाओं की तह के नीचे सच्चाई को समझने की ज़रूरत है। सूडान, सोमालिया और यमन में फैली हिंसा, भुखमरी और अकाल की शिकार जनता के असल कातिलों को नंगा करने की ज़रूरत है। यह पूँजीवादी व्यवस्था, मुनाफे की बे-लगाम हवस (जो इसके ज़िन्दा रहने की ज़रूरी शर्त है) के कारण किस हद तक गिर सकती है, सहारा का छिपा हुआ युद्ध इसका उदाहरण है।

विश्व स्तर पर सुरक्षा खर्च और हथियारों के व्यापार में हैरतअंगेज़ बढ़ोत्तरी

विश्व में 102 करोड़ लोग भुखमरी के शिकार हैं, 50 लाख बच्चे हर वर्ष कुपोषण से मरते हैं, 135 करोड़ लोग 1.25 डॉलर प्रति दिन में गुजारा करते हैं और 300 करोड़ से अधिक (लगभग आधी आबादी 2.50 डॉलर में प्रतिदिन गुजारा करती है), प्रतिदिन विश्व में 22,000 बच्चे गरीबी, भुखमरी के कारण मौत के मुँह में चले जाते हैं, जहाँ प्रत्येक मिनट 15 बच्चे मौत के मुँह में चले जाते हैं, 86.3 करोड़ लोग गन्दी बस्तियों में रहते हैं, 79.5 करोड़ लोगों को तो दो वक्त्र का पूरा भोजन भी नहीं मिल पाता, 160 करोड़ लोग विश्व भर में बेघर हैं। लेकिन ऐसे माहौल में भी आज के निरो हथियारों के व्यापार में मुनाफ़ा कमाने में व्यस्त हैं। हर देश किसी न किसी नये हथियार का मॉडल तैयार करके अपनी ताकत का अन्ध-राष्ट्रवादी गुणगान कर रहा है। “इस हथियार की खोज से देश और ताकतवर हुआ”, “इस मिसाइल ने देश की सुरक्षा को मज़बूत किया”, “हमारा मुल्क बना बड़ी परमाणु शक्ति” आदि जुमलों के रूप में विश्व-भर के पूँजीपति अपने मीडिया द्वारा हथियारों के इस मानवद्रोही व्यापार के लिए लोगों में जहाँ आम सहमति बनाते हैं, वहाँ अन्ध-राष्ट्रवाद का गुणगान करके इन हथियारों की खपत के लिए भी रास्ता साफ़ कर रहे हैं। अगर अमेरिका “सारे बमों की माँ” बनाता है तो रूस “सारे बमों का बाप” तैयार कर देता है। हथियारों का व्यापार जो विश्व के प्राकृतिक साधनों और मानवीय श्रम को जहाँ गैर-पैदाकार पैदावार में फ़ालतू में खपा रहा है, वहाँ जब यह हथियार प्रयोग किये जाते हैं तो लाखों भोले-भाले मासूम लोगों का खून बहाते हैं। दो विश्व युद्धों में विश्व साम्राज्यवादियों की ओर से करोड़ों लोगों का क्रल और उसके बाद लगातार मध्य-पूर्व सीरिया, इराक़, अफ़ग़ानिस्तान, सोमालिया, यमन आदि देशों में जो खून की होली विश्व साम्राज्यवादियों द्वारा खेली जा रही है, इसकी कुछ चुने हुए उदाहरण हैं।

पिछले पाँच वर्षों (2012-2016) के दौरान विश्व स्तर पर लगभग सारे देशों की सरकारों द्वारा सुरक्षा और सैन्य खर्च में भारी वृद्धि हुई है और इसके साथ ही विश्वव्यापी स्तर पर हथियारों का व्यापार भी इन्हीं पाँच वर्षों में ठण्डे युद्ध के समय के व्यापार से भी बढ़ चुका है।

अगर हम विश्व के देशों की सरकारों द्वारा सुरक्षा पर बढ़ते खर्च को देखें तो यह पिछले पाँच वर्षों में बहुत बढ़ गया है। अमेरिका ने 2015 के दौरान अपनी सुरक्षा पर 59,600 करोड़ अमेरिकी डॉलर खर्च किये हैं जो कि कुल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 3.3 फ़ीसदी है। लेकिन ‘सेण्टर फ़ॉर इण्टरनेशनल पॉलिसी’ के अनुसार अमेरिका के इस खर्च में पैण्टागन का “काला बजट”, “काण्टीजेंसी”, इराक़, अफ़ग़ानिस्तान, सीरिया युद्ध आदि के खर्च जोड़े जायें

तो यह एक ट्रिलियन (यानी 10,000 करोड़ डॉलर) बनता है। चीन 21,500 करोड़ डॉलर खर्च के दूसरे नम्बर पर है, जो उसकी जीडीपी का 1.9% है। साऊदी अरब 8,720 करोड़ डॉलर, रूस 6,640 करोड़ डॉलर और यूके 5,550 करोड़ डॉलर खर्च के तीसरे, चौथे और पाँचवें नम्बर पर हैं। भारत 5,360 करोड़ डॉलर खर्च करके मिल्ट्री खर्च करने में विश्व-भर में से छठे स्थान पर है जबकि मानव विकास में भारत का स्थान 186 देशों में से 136 वाँ है। भारत अपनी सकल घरेलू उत्पादन का 2.3 फ़ीसदी सुरक्षा पर खर्च करता है, जबकि 2015 में ही भारत ने जीडीपी का 1.3 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च करना था, लेकिन घाटे का विलाप करते हुए उससे भी 20 फ़ीसदी कम खर्च किया। शिक्षा पर 2% था, लेकिन सरकारी शिक्षा संस्थानों की हालत देखकर इस खर्च का भी अन्दाज़ा हम लगा सकते हैं। 2015-2016 के बजट के दौरान सरकार ने स्वास्थ्य और शिक्षा पर होने वाले खर्च में क्रमवार 15% से 16% कटौती की है। इसी तरह भारत का सुरक्षा खर्च फ़्रांस, जापान, जर्मनी, साउथ कोरिया, ब्राज़ील, आस्ट्रेलिया, कैंनेडा आदि जैसे देशों में भी अधिक है। इन सभी देशों सहित विश्व के कुल देशों ने सुरक्षा और फ़ौजी साजो-सामान पर 1,67,500 करोड़ डॉलर यानी कि विश्व जीडीपी का 2.3% खर्च किया जो कि 2014 के मुक़ाबले 1% अधिक है।

जबकि विश्व स्तर पर शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं पर विश्व जीडीपी का महज़ 0.47 प्रतिशत ही खर्च होता है। पिछले 10 वर्षों के दौरान अगर सुरक्षा और युद्ध के सामान पर विश्व के सारे देशों का खर्च बढ़ा है तो स्वास्थ्य और शिक्षा पर खर्च लगातार घटाया जा रहा है। यहाँ हम इस प्रबन्ध के लगातार मानवद्वेषी होने का अन्दाज़ा लगा सकते हैं।

यूएनओ के अनुसार अगर 26,500 करोड़ (अकेले अमेरिका के 2015 में सुरक्षा खर्च के आधे से भी कम) प्रति वर्ष खर्च किया जाये तो गरीबी और भुखमरी विश्व में से दूर की जा सकती है जो कि कुल सैन्य बजट का सिर्फ़ 13% बनता है। इसी तरह कुल विश्व सुरक्षा खर्च का अगर 12% शिक्षा पर खर्च हो तो मौजूदा शिक्षा प्रणाली में सुधार किया जा सकता है। 4% खुराक पर खर्च किया जाये तो सबको भोजन मिल सकता है। विश्व के सारे देशों द्वारा किये जा रहे सैन्य खर्च में से सिर्फ़ मुख्य 20 देशों के सैन्य खर्च के साथ ही विश्व में अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ और सभी के लिए घर आदि बुनियादी समस्याओं को हल किया जा सकता है। लेकिन इस मानवद्रोही व्यवस्था में विश्व-भर के पूँजीपति अपने मुनाफ़ों के बारे में ही सोचते हैं और उनकी मैनेजिंग कमेटियाँ यानी कि सरकारें भी उनके मुनाफ़ों को ही ध्यान में रखकर नीतियाँ बनाती हैं।

दूसरा, विश्व स्तर पर हथियारों के व्यापार में हैरानीजनक वृद्धि हुई है। ‘दी गार्डीयन’ के अनुसार विश्व स्तर पर हथियारों का व्यापार पिछले पाँच वर्षों के दौरान (2012-2016) दोगुना बढ़ा है जो 1990 के शीत युद्ध के वर्षों के खर्च को भी पार कर चुका है। 2015 में विश्व में हथियारों और फ़ौजी साजो-सामान का व्यापार 37,070 करोड़ डॉलर था। जिसमें कि 20,970 करोड़ डॉलर यानी कि 31% हिस्सा अमेरिकी कम्पनियों का था, जिनमें से मुख्य लोदीख मार्टीन मोहरी है। इसके इलावा बोइंग, युनाइटेड टेकनोलोज़िज़, जनरल डायनामिक्स, नोर्थरोप गुरूमन आदि प्रमुख हैं। दूसरे नम्बर पर हथियारों की निर्यातक रूसी कम्पनियाँ हैं जिनका हिस्सा 27 फ़ीसदी है। इसके इलावा 2015 में चीन, जापान, फ़्रांस का हथियार निर्यातों में हिस्सा 5.5 फ़ीसदी और यूके का 4 फ़ीसदी था।

2015 में विश्व का सबसे बड़ा हथियार आयातक भारत था और अभी भी है। 2012-2016 के दौरान विश्व हथियार आयात में भारत का हिस्सा 13% था। दूसरे नम्बर पर साऊदी अरब आता है जिसका आयात इन्हीं पाँच वर्षों में 212% बढ़ गया है। वियतनाम का आयात 202% बढ़ा है। एशिया विश्व में हथियारों का सबसे बड़ा आयातक है। मध्य-पूर्व में हथियार की खरीद में 245% वृद्धि हुई है। चीन 2007 तक बड़ा आयातक था लेकिन अब वह अपने घरेलू उद्योग का विकास करके विश्व के बड़े हथियार निर्यातकों में शामिल हो गया है।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि सारे साम्राज्यवादी देश क्यों हथियारों पर पानी की तरह पैसा बहाते हैं जबकि बहुत बड़ी मेहनतकश गरीब आबादी को स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन, कपड़ा, मकान जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं मिल रही हैं और वह भुखमरी, कुपोषण और कंगाली की जिन्दगी जीने पर मज़बूर है? इसका प्रमुख कारण है हथियारों के उद्योग का अथाह मुनाफ़े का स्रोत बन जाना है। क्योंकि हर तरह की पूँजीवादी उत्पादन का मुख्य और सिर्फ़ एक ही उद्देश्य मुनाफ़ा कमाना होता है। जिस चीज़ में से पूँजीपतियों को मुनाफ़ा होता है, वह उस चीज़ का उत्पादन करता है, जहाँ से मुनाफ़ा आना बन्द हो जाये तो उसका उत्पादन रोक दिया जाता है। हथियारों के व्यापार में विश्व के साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपतियों को बहुत मुनाफ़े होते हैं। ऐसे ही नहीं कि आज हथियारों का उद्योग सबसे बड़ा उद्योग बन चुका है। पूँजीवादी उत्पादन का एक नियम यह भी है कि उत्पादन की खपत भी होनी चाहिए, नहीं तो उद्योग रुक जायेगा। दूसरे विश्व युद्ध के बाद हथियारों के इस उद्योग ने अथाह मुनाफ़े कमाये, जिसमें अमेरिकी कम्पनियाँ प्रमुख थीं। इसी कारण विश्व की 10 बड़ी हथियार बनाने वाली कम्पनियों में से 7 अमेरिकी हैं।

और अमेरिका का व्यापार भी विश्व के हथियारों के व्यापार का 33 फ़ीसदी है। हथियार बेचने के लिए ये पूँजीपति घराने सरकारों पर दबाव डालते हैं ताकि किसी न किसी तरीके से हथियार बेचे जायें। इस कारण पूरे विश्व में ‘अपनी सुरक्षा मज़बूत करने’ या ‘विरोधी देश द्वारा युद्ध का हौवा खड़ा करके’, ‘आतंकवाद का मुक़ाबला’ आदि ढंगों द्वारा हथियार बेचने और खरीदने का व्यापार चलता है। बड़े साम्राज्यवादी देशों द्वारा दूसरे देशों को पहले हथियार बेचे जाते हैं। फिर कुछ देशों से विश्व को परमाणु खतरे से बचाने का बहाना बनाकर युद्ध छेड़कर हथियारों की खपत की जाती है। यह बहाना अमेरिका फिर भी बना सकता है जब कोई देश रूस, चीन, या फ़्रांस आदि से हथियार खरीदता है। इस तरह हथियार उद्योग के पूँजीपति बड़े मुनाफ़े कमा सकते हैं। हमने ऊपर चर्चा की है कि विश्व-भर के हथियारों के उद्योग में से सबसे बड़े अमेरिका में हैं। इसीलिए अमेरिका “शान्ति” का दूत बनकर कभी इराक़ के परमाणु हथियारों से विश्व के खतरे की बात करता है और कभी सीरिया से, कभी इज़राइल द्वारा फ़िलिस्तीन पर हमले करवाता है, कभी अलकायदा, फ़िदाइन आदि की हिमायत करता है कभी विरोध, विश्व स्तर पर आतंकवाद का हौवा खड़ा करके छोटे-छोटे युद्धों को अंजाम देता है, ड्रोन हमलों के साथ पाकिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, यमन, लीबिया, इराक़, सुमालिया आदि मुल्कों में मासूमों का क्रल करता है और किसी को भी मार कर आतंकवादी कहकर बात ख़त्म कर देता है। दो मुल्कों में आपसी टकरावों या किसी देश के अन्दरूनी टकरावों का फ़ायदा अपने हथियार बेचने के लिए उठाता है जैसे -- ईरान और इराक़, इज़राइल और फ़िलिस्तीन, भारत और पाकिस्तान, उत्तरी और दक्षिणी कोरिया के झगड़े आदि। इसके बिना देशों के अन्दरूनी निजी झगड़ों जैसे - मिस्र, यूक्रेन, सीरिया आदि से भी फ़ायदा उठाता है। ये सारी करतूतें अमेरिका अपने हथियार बेचने के लिए अंजाम देता है। भले ही इराक़, सीरिया, लीबिया आदि के साधनों पर भी उसकी गिद्ध आँख टिकी है। इसी कारण अब तक अमेरिका ने करोड़ों मासूम लोगों का क्रल किया है लेकिन मीडिया द्वारा यह दिखाया जाता है कि अगर अमेरिका न हो तो विश्व को आतंकवादी खा ही जायेंगे।

दूसरा कारण यह है कि विश्व के प्राकृतिक साधनों की लूट और विस्तारवादी नीतियों के कारण विश्व पूँजीवाद के एकाधिकारी गिरोहों की आपसी कलहा साम्राज्यवादी विश्व बाज़ार के बँटवारे के लिए लड़ते रहते हैं क्योंकि इन राक्षसों का एकाधिकार इस हद तक पहुँच चुका है कि घरेलू बाज़ार इनके लिए काफ़ी नहीं रही। इस कारण इनके बीच विश्व के मज़दूर वर्ग द्वारा पैदा किये गये मुनाफ़े में से

हिस्सा बाँटने के लिए संघर्ष चलता रहता है। बड़े साम्राज्यवादी देश छोटे साम्राज्यवादी देशों को दबाते हैं, छोटे-बड़े साम्राज्यवादी देश एशिया, अफ़्रीका के देशों को दबाते हैं, बात यह है कि हर देश अपने से कमज़ोर को दबाने से पीछे नहीं हटता। अपने विरोधी को दबाने के लिए भी सुरक्षा पर भारी खर्च करना पड़ता है ताकि विश्व के मानवीय और प्राकृतिक साधनों की लूट और विश्व मण्डी में अधिक रसूख बनाया जा सके। ऐसे ही नहीं अमेरिका ने 63 देशों में सैन्य अड्डे स्थापित किये हुए हैं, क्योंकि हथियारों के व्यापार पर अमेरिका ही सबसे अधिक निवेश करता है। अमेरिका को चुनौती देने वाले आज चीन और रूस दो बड़े देश हैं और इनके आपसी मतभेद भी समय-समय पर सामने आते रहते हैं। अमेरिका रूस के मतभेद तो सीरिया और यूक्रेन के मामले में जगजाहिर हो चुके हैं।

तीसरा और गौण कारण है जनान्दोलनों का डर। मरणासन स्थिति में पहुँचा पूँजीवाद यहाँ खून चूसने वाला, परजीवी और नरभक्षी हो चुका है कि नशों का व्यापार, अश्लील और पोर्न फ़िल्में, देह व्यापार, मनुष्य को खरीदना-बेचना, घटिया दवाइयाँ आदि नीच-से-नीच काम से लेकर पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे हर क्षेत्र में मुनाफ़ा कमा रहा है और लोगों के गले काट रहा है। मुठ्ठी-भर लोगों के अधिक मुनाफ़े के लिए बढ़ती हवस के कारण आम लोगों की जिन्दगी दिनों-दिन भयंकर और कठिन होती जा रही है। इसका अन्दाज़ा पिछले दशक से विश्व-भर में लगातार जारी स्वयंस्फूर्त जनान्दोलनों से लगाया जा सकता है। पूँजी के भूखे राक्षसों द्वारा सताये लोग गुस्से से सड़कों पर उतर रहे हैं। इसी कारण जनान्दोलनों का डर हुक्मरानों की नींद भी उड़ा रहा है। पूँजीपति अधिक से अधिक हथियार इकट्ठा करके अपने मन के भय को दबाने की कोशिश करने में लगे हुए हैं।

उपरोक्त कारण हैं जो हुक्मरानों को मानवीय श्रम के खून की कमाई को हथियारों जैसे गैर-उत्पादन कार्यों पर बहाने के लिए मज़बूर करते हैं जिनके तहत एक ओर हुक्मरान लोगों का खून निचोड़कर हथियारों जैसे मानवद्वेषी औज़ारों में से भी भारी मुनाफ़ा कमा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर लोग गरीबी, भुखमरी, कंगाली की जिन्दगी बिता रहे हैं। लेकिन यह सब कुछ सीधा-सपाट नहीं है बल्कि हुक्मरान भी जनान्दोलनों से घबराये हुए हैं और भीतरी डर के कारण अपने बँगलों की दीवारों ऊँची करने में लगे हुए हैं और खुद को हथियारबन्द कर रहे हैं। लेकिन इतिहास गवाह है कि जब भी मेहनतकश जनता जागी है तो हुक्मरानों के सभी इशारे धरे-धराये ही रह गये हैं। जन बग़ावतों की तूफ़ानी बाढ़ के आगे हुक्मरानों द्वारा की जा रही किलेबन्दियाँ रेत की दीवार की तरह ढह जाती हैं।

ऐसे बनता है आपका मोबाइल फ़ोन

आपके हाथों में या जेबों में विज्ञान की वह खोज है जो आपको दुनिया के एक-एक कोने से जोड़ देती है। हाँ, सही समझे, मैं मोबाइल फ़ोन की बात कर रही हूँ जब भी कोई नया मोबाइल मार्किट में आता है तो जंगल की आग की तरह मध्यवर्ग में उसके ऐप, फ़ीचर जानने की, खरीदने की लहर दौड़ जाती है। फिर आप उसे अपने हाथों से छूते हैं, उँगलियों से उसके फ़ीचर जानते हैं, देखते हैं कि इसका कैमरा सेल्फ़ी (फ़ोटो) कितनी बढ़िया खींच सकता है। इसकी बैटरी कितने घण्टे चल सकती है। कोई-कोई अपनी जिज्ञासा व्यक्त करता हुआ यह भी जानने की कोशिश करता है कि इन महँगी बड़ी कम्पनियों के बनाये ऐनॉयड, स्मार्टफ़ोन, आई-फ़ोन की मैनुफ़ैक्चरिंग कैसे होती है।

चलिए आज हम इन मोबाइल फ़ोन, लैपटॉप में इस्तेमाल की जाने वाली बैटरियों के पीछे छिपी, अनदेखी मौत जैसी भयानक जिन्दगी की बात करते हैं।

इन बैटरियों (लीथियम-आइन बैटरियाँ) को बनाने के लिए कोबाल्ट नाम की धातु इस्तेमाल की जाती है। इन लीथियम-आयन बैटरियों का इस्तेमाल ऐपल, सैमसंग, सोनी, माइक्रोसॉफ़्ट, डेल और बार्की कम्पनियाँ करती हैं। अब बात करें कि कोबाल्ट का स्रोत कहाँ है तो दुनिया के ग़रीब देशों में से एक देश (लेकिन कोबाल्ट का अमीर स्रोत) की तस्वीर आँखों के सामने आ जाती है। डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ़ कोंगो देश जिसकी आबादी 67 मिलीयन है और 2014 में वर्ल्ड बैंक ने इस देश को मानवीय विकास सूचकांक

पर पीछे से दूसरा नम्बर दिया है।

दुनिया-भर में जितना कोबाल्ट पैदा होता है, उसका आधा कोंगो से आता है और उसका 20% आर्टिसनल खदानों से निकाला जाता है। किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समूह द्वारा ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से चलने वाली छोटे स्तर पर खदानों को आर्टिसनल खदानें कहा जाता है। या फिर यह भी कह सकते हैं कि कम-से-कम मशीनरी, टेक्नालॉजी से ये खदानें चलती हैं, जिनमें वहाँ काम कर रहे मर्द-औरत, बच्चे ही मशीनें होते हैं। जो अपने हाथों-पैरों को इस्तेमाल करके खानों को खोदते हैं, उनमें नीचे उतरते हैं और धातु की खोज में खुदाई करते हैं। बच्चे मिट्टी में मिले हुए कोबाल्ट को अलग करते हैं। यहाँ जिस हद तक एक इन्सान से काम करवाया जा सकता है, वह करवाया जाता है। 4500 कोंगो निवासी इन खदानों में काम करते हैं। ये खदानें किसी के अन्तर्गत नहीं आतीं, देश के खदानों से सम्बन्धित क़ानून इस पर लागू नहीं होते, इन खदानों को चलाने वाले अपनी मर्जी से थपड़-कौड़े मारते हुए, भूखे रखकर जैसे चाहे उन लोगों से काम ले सकते हैं। इन खदानों में खुदाई के लिए उतरना ही इन्सान के लिए विष उगलने के बराबर है। जो मज़दूर औरतें, मर्द, बच्चे खदानों में काम करते हैं, भयानक बीमारियों से ग्रस्त हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार इन खदानों में 40,000 बच्चे काम करते हैं, सबसे छोटे मज़दूर 6-7 वर्ष के बच्चे हैं, जो बोरियों में भरी कच्ची धातु उठाते हैं। जिनका भार उन बच्चों के भार से भी ज़्यादा होता है। 12-14 घण्टे काम करने के बाद भी माँ-

बाप बच्चों को स्कूल भेजने के योग्य नहीं हो पाते। ज़्यादातर बच्चे, नौजवान छोटी आयु में ही मर जाते हैं। दिन-भर की मज़दूरी की 2 डॉलर दिहाड़ी मिलती है।

कोंगो के ज़्यादातर निवासी श्वास रोगों, जोड़ों के दर्द, अँधेरे में रहने के कारण आँखों की रोशनी का चले जाना जैसी बीमारियों से ग्रस्त हैं। लाखों लोग एड्स से पीड़ित हैं। जो मज़दूर लगातार खुदाई करते हैं, कोबाल्ट के सम्पर्क में रहते हैं, उनको हार्ड मैटल लंग डिज़ीज़ फेफड़ों का रोग हो जाता है। वहाँ के एक प्रोफ़ेसर आर्थर कनीकी जो कि इन खदानों के वातावरण पर प्रभाव के बारे में अध्ययन कर रहे हैं, उनका कहना है कि ये कम्पनियाँ हमारे देश से लेकर तो बहुत कुछ जाती हैं, लेकिन देकर कुछ भी नहीं जातीं, सिवाय गन्दगी, बीमारियों, और भयानक जिन्दगी के।

वहाँ लगातार खुदाई होने के कारण मिट्टी की उपजाऊ शक्ति खत्म हो चुकी है, वहाँ के पानी को पीने योग्य पानी ही नहीं कहा जा सकता है, कोंगो निवासी न ही कृषि कर सकते हैं और न ही कोई और काम, क्योंकि कोंगो अथाह धातुओं का भण्डार (कोबाल्ट, ताँबा, सोना, यूरेनियम) होने के कारण खदानों की धरती बन चुका है, वहाँ के लोगों के पास खदान मज़दूर बनने के सिवा कोई रास्ता नहीं, कोंगो की एक महिला निवासी ने बताया कि यहाँ का पानी पूरी तरह प्रदूषित हो चुका है, बच्चे इस पानी के कारण बीमार हो जाते हैं...।

आँकड़ों के अनुसार देखें तो यहाँ 30 लाख केस डायरिया के हैं और हर वर्ष एक लाख इंसानों की जान

डायरिया के कारण चली जाती है।

हर वर्ष अनेकों लोगों की जानें जाती हैं और यह कोबाल्ट दुनिया-भर में जाता है। कोंगो से कोबाल्ट दुनिया-भर में सीडीएम (congo dongfang minig international) कम्पनी द्वारा चीन जाता है, चीन की कम्पनी हुआएऊ कोबाल्ट बैटरियाँ बनाती है बड़े स्तर पर और अलग-अलग कम्पनियाँ जो मोबाइल, लैपटॉप तैयार करती हैं, उनको भेजती है।

चीनी, अमेरिकन, यूरोपियन कम्पनियाँ जो बड़े स्तर पर मुनाफ़ा कमाती हैं, इन कम्पनियों को चलाने के लिए हर कोशिश करती हैं कि कैसे न कैसे करके बड़े मुनाफ़े कमायें और एक-दूसरे से आगे निकल जायें, लेकिन साथ ही इसके पीछे वे घोर जन-विरोधी भूमिका बाख़ूबी निभाती हैं। भले ही लूट प्राकृतिक स्रोतों की हो, इंसान को मशीन बनाने की दौड़ हो, इंसान से उसकी रोटी का आखिरी टुकड़ा, उसकी आखिरी साँस तक छीन लेने की बात क्यों न हो, वह इसी दौड़ में लगे रहते हैं। अपने मानवद्रोही चरित्र को छुपाने के लिए भले वे जितने मर्जी तौर-तरीक़े अपनायें, लेकिन सच यही है कि खून पीने वाली जोंकों की तरह ये मुनाफ़ाखोर मानवीय जिन्दगियों को निगल रहे हैं। ख़ैर, भले ही कोई भी खदान हो, कोई भी कारख़ाना हो, फ़ैक्टरियाँ हो लाखों ही मज़दूरों को अपाहिज बना चुके हैं, लाखों मज़दूरों को मारकर निगल चुके हैं। खदानों, फ़ैक्टरियों में काम कर रहे मज़दूर जिनकी बदौलत हम अपनी जिन्दगी आराम से जी रहे हैं, भले वह मोबाइल

की सुविधा हो या अपने जिस्म पर रंगदार कपड़े हों। उन मज़दूरों के स्वास्थ्य, उनकी जिन्दगी कीड़े-मकौड़ों से भी बदतर है। बच्चे जो कहने को तो संविधान की पोथियों में पढ़ने के हक़दार हैं, खेलने के हक़दार हैं, बाल-मज़दूरी ग़ैर-क़ानूनी है, वहीं बड़ी गिनती में ये बच्चे अपनी उम्र से ज़्यादा काम, अपने भार से ज़्यादा भार ढोते हैं।

सच्चाई तो यह है कि मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था में श्रमिकों की जिन्दगी नर्क़ बनी हुई है। उन्हें न तो कहीं कोई सहायता मिलती है और न ही कहीं से इंसाफ़ मिलता है। न उसकी सुनवाई सरकार करती है, न अदालत करती है, न ही प्रशासन। ऐसे में उनके पास संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए खुद लड़ने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। यह किसी एक देश की कहानी नहीं है, हर जगह आज मानव श्रम को लूटा जा रहा है। उनको भी तो जिन्दगी जीने का अधिकार है, उनको स्वास्थ्य सुविधाएँ मिलें, मुआवज़े मिलें। लेकिन सिर्फ़ इतना ही काफ़ी नहीं होगा। पूँजीवादी व्यवस्था जब तक क्रायम रहेगी, श्रमिकों की जिन्दगी में कोई बुनियादी सुधार नहीं आने वाला। इसलिए ज़रूरी है कि मानवद्रोही, मुनाफ़े पर टिकी हुई इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंका जाये और एक अच्छा समाज बनाया जाये, जिसमें सबको जीने का अधिकार हो।

- रविन्दर

घातक तथा व्यापक प्रभाव डालने वाले समाचार

हाल ही में आये दो साधारण से समाचार, भविष्य में अपने निहितार्थ में व्यापक तथा घातक प्रभाव डालने वाले हो सकते हैं—

एक अपुष्ट सा समाचार आया कि यू पी विजय से उन्मादित भाजपा कार्यकर्ता, घर-घर जाकर झंडे लगायेंगे। 'मेरा घर, भाजपा का घर' के नाम पर देश में कोई ऐसा बंधन नहीं है कि कौन अपने घर पर कौन सा झंडा लगाये। बस, वह झंडा प्रतिबंधित नहीं होना चाहिये। ऐसा भी नहीं है कि कोई अपने घर पर कोई झंडा लगाये ही। काश कि यह आया गया सा समाचार ही हो। परंतु जिस दौर में यह तय करने की प्रवृत्ति निरंतर बढ़ रही हो कि क्या खाना है, क्या पहनना है, किसके साथ घूमना है, किसके साथ बैठना है, उस दौर में ऐसे समाचार आशंकित करते हैं। सिहरन पैदा करते हैं कि घरों पर पार्टी के झंडे लगाना, कहीं लोगों को चिन्हित करने का षड्यंत्र न बन जाये। उनका झंडा लगाने के प्रति असहमति, कहीं आपकी मुसीबत न बन जाये। चिन्हित करने के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं, सम्भवतः इस पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये।

कुछ ऐसे ही आशंकित करने वाला एक समाचार और आया— 'अमर उजाला' के एक समाचार के अनुसार, रविवार, 14 मई को, लखनऊ में, उत्तर प्रदेश के अनिर्वाचित मुख्य मंत्री योगी, आदित्यनाथ ने प्रश्न किया है कि बहुसंख्यकों को गाली देने वाले

मानवतावादी कैसे हो सकते हैं। वे महाराज सुहेलदेव हिंदू विजयोत्सव को सम्बोधित कर रहे थे। समाचार बताता है कि वे इतना ही नहीं बोले अपितु आर एस एस की पूरी तरह पक्षधरता करते हुये यह भी कहा कि आर एस एस निष्पक्ष भाव से मलिन बस्तियों में काम करके राष्ट्रियता का भाव पैदा करता है तो उसे साम्प्रदायिक कहा जाता है। मगर जिन्होंने तुष्टिकरण की नीति से समाज को बांटने का काम किया, जो बहुसंख्यक तथा महापुरुषों को गालियाँ देते हैं, वे खुद को मानवतावादी कहते हैं। एक चुनौती की तरह उन्होंने कहा कि कौन साम्प्रदायिक है, कौन मानवतावादी है, इस पर एक बार खुल कर बहस हो जानी चाहिये।

यू पी में भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिलने तथा के मुख्य मंत्री बनने के बावजूद इस तरह की बातें नहीं हों तो आश्चर्य होगा। लेकिन अब यह भी हुआ है, कि कभी मुश्किल की घड़ियों में, संघ को सांस्कृतिक संगठन घोषित कर, राजनीति से सुरक्षित दूरी बनाये रखने वाला संगठन, अब प्रत्यक्ष रूप से राजनीति संचालित कर रहा है। वह भी सत्ता की राजनीति। देश-भक्ति, देशद्रोह के उसने अपने पैमाने गढ़ लिये हैं। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद के नाम पर उसकी दृष्टि संकीर्ण से संकीर्णतम होती जा रही है। ऐसे में फतवों की तरह उसके बयान आ रहे हैं। प्रतिरोध का कोई भी स्वर उसे सुहा नहीं रहा है। सत्ता पक्ष के चुने हुये जनप्रतिनिधियों की ओर से,

पुलिस पर जिस प्रकार के हमले हुये हैं, वे गवाही देते हैं कि मनमानी करने की उसकी राह में आने वाली किसी भी संवैधानिक संस्था को वह विशेष महत्व नहीं दे रहा है। सामान्यतः तो उस ओर से उपेक्षा भाव ही है। किसी भी तरह की अराजकता से उसे कोई गुरेज नहीं है। और, यह सब हो रहा है सुशासन तथा राष्ट्रवाद के नाम पर। इस माहौल में बड़ी मुसीबत यह भी है कि अपने सुव्यवस्थित कुप्रचार तंत्र के माध्यम से, बहुसंख्यक सवर्ण तथा बड़ी हद तक पिछड़ों और दलितों के दिमाग में भी यह यह बैठाने में सफल हुआ है कि उसका रास्ता सही है। अकारण नहीं है कि कुछ भी ठीक न चलने के बावजूद यह वर्ग कहीं असंतोष महसूस नहीं कर रहा है। बल्कि इस ओर ध्यान दिलाने पर इस वर्ग की ओर से सलाह आती है कि पिछले शासनों में जो कुछ हुआ है, उसे ठीक करने में समय लगेगा। लॉ एण्ड ऑर्डर की व्यवस्था की ही बात करें तो उत्तर प्रदेश का चुनाव गुंडा-राज समाप्त करने के नारे के साथ लड़ा गया था। शायद ही कहीं से लग रहा हो कि बदले निज़ाम में भी साधारण से लेकर जघन्यतम अपराधों तक में कोई कमी आयी हो। लेकिन इस वर्ग में कतई बेचैनी प्रतीत नहीं होती है। कोई प्रश्न खड़े करने की मानसिकता में नहीं होता है। जो सवाल उठाते हैं, उन पर तोहमत और जड़ दी जाती है।

अधिक चिंता यह नहीं होनी चाहिये कि सत्ता कैसे लोगों द्वारा संचालित

हो रही है। वह भी लगभग विपक्षहीन वातावरण में, चिंता यह होनी चाहिये कि कम से कम बहुसंख्यक समुदाय या तो सत्ता की इस शैली का चरित्र समझ नहीं रहा है या उसे यह शैली स्वीकार्य है। असहिष्णु शासन शैली, उसकी पसंद बनती जा रही है। अल्प संख्यक समुदायों को तो छोड़ दीजिये, बहुसंख्यक समुदाय के भी दलितों, पिछड़ों, स्त्रियों पर हमले उसे विचलित नहीं कर रहे हैं। इस आलेख को लिखते-लिखते एन डी टी वी से फ्लैश हो रहा है कि झारखंड के पूर्व सिंह भूम में, बच्चा चुराने के संदेह में, भीड़ ने, तीन लोगों को पीट-पीट कर मार डाला। पुलिस के हस्तक्षेप करने पर उस पर भी हमला हुआ। पूर्व में ऐसी घटना पड़ौस के सराय केला में घट चुकी है। वहाँ तीन पशु व्यापारी भीड़ द्वारा मार दिये गये थे।

सत्ता-समर्थक वर्ग ऐसी घटनाओं से विचलित नहीं हो रहा है। इनके पक्ष में तर्क गढ़ने बैठ जाता है। रोटी-कपड़ा-मकान-शिक्षा-स्वास्थ्य-रोजगार जैसे मुद्दे उसके लिये गौड़ हो चुके हैं। इन पर वह चर्चा ही नहीं करना चाहता है। वह भी तब, जब वह खुद इन अभावों से जूझ रहा है। कम से कम रोजगार जैसे मुद्दे को तो वह आरक्षण के पाले में गेंद डाल कर मुक्त हो लेता है। वह यह नहीं समझना चाहता है कि आरक्षण केवल सरकारी नौकरियों में प्रभावी है। सरकारी नौकरियों के बड़े श्रोत निरंतर विनिवेश का शिकार होकर निजी क्षेत्र में जा रहे हैं। और, निजी क्षेत्र का सबसे

बड़ा श्रोत, आई टी सेक्टर, रोजगार देने के बजाये प्रति वर्ष दो लाख नौकरियाँ कम करने पर आमादा है।

ऐसे माहौल में योगी धर्म निरपेक्षता-मानवता-दलित-महिला-अल्पसंख्यक जैसे मुद्दों पर बहस करवाना चाहते हैं तो किससे। प्रगतिशील, वाम, नास्तिकों की जो अवधारणा इन मुद्दों को लेकर है, उससे तो वे पहले ही असहमत ही नहीं, कुपित भी हैं। तो स्पष्ट है कि उनकी मंशा इन मुद्दों को अपने ही वर्ग द्वारा मनमाफिक परिभाषित करवाने की ही होगी। चाहत यह होगी कि देश उनके द्वारा गद्दी परिभाषा स्वीकार करे। यह सोचना भ्रामक होगा कि इस की अवधारणा योगी अलग से लेकर आये होंगे। भूलना यह नहीं चाहिये कि संघ के असंख्य अदृश्य मुँह हैं।

ऐसे में वे क्या करें जो आदमी से आदमी के बीच विभाजन के विरुद्ध जूझ रहे हैं। उनका तो मिशन ही सामाजिक सम्मान तथा समानता है। यह वर्ग बहुत बड़ा है। बहुत जुझारू है। अकेला नहीं है। जहाँ भी अन्याय है, अपमान है, असमानता है, वहाँ जूझ रहा है। लेकिन विभक्त है। उसकी अपनी समझ है। अपने अहं हैं। जबकि ऐसा होना नहीं चाहिये। कुछ ऐसी ही स्थितियों के लिये शायद दुष्प्रत कुमार लिखते हैं— 'बाढ़ की सम्भावनायें सामने हैं, और नदी किनारे घर बसे हैं।'

- दिनेश बैस

मज़दूर का अलगाव

कार्ल मार्क्स

(आर्थिक नियमों के अनुसार मज़दूर का अलगाव इस तरह से प्रकट होता है: मज़दूर जितना अधिक उत्पादन करता है, उसके पास उपभोग करने के लिए उतना ही कम रहता है, वह जितना अधिक मूल्य पैदा करता है, वह खुद उतना ही अधिक मूल्यहीन और महत्वहीन होता जाता है, उसका उत्पादन जितना ही अधिक सुन्दर-सुगठित होता है, मज़दूर उतना ही कुरूप-बेडौल बनता जाता है, उसकी बनायी वस्तुएँ जितनी अधिक सभ्य होती जाती हैं, मज़दूर उतना ही अधिक बर्बर होता जाता है। उसका श्रम जितना अधिक शक्तिशाली होता जाता है, मज़दूर उतना ही अधिक शक्तिहीन होता जाता है, उसका श्रम जितना ही कुशल होता जाता है, मज़दूर उतना ही कम कुशल होता जाता है और वह उतना ही अधिक प्रकृति का दास बन जाता है।)

राजनीतिक अर्थशास्त्र मज़दूर (श्रम) और उत्पादन के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध पर ध्यान न देकर श्रम की प्रकृति में अन्तर्निहित अलगाव को

छिपाता है। यह सच है कि श्रम अमीरों के लिए शानदार चीज़ें पैदा करता है - लेकिन मज़दूर के लिए यह अभाव पैदा करता है। यह महल पैदा करता है - लेकिन मज़दूर के लिए सिर्फ़ गन्दी झोपड़ियाँ। यह सुन्दरता पैदा करता है - लेकिन मज़दूर के लिए कुरूपता। यह श्रम की जगह मशीनें ले आता है, लेकिन यह मज़दूरों के एक हिस्से को वापस बर्बर क्रिस्म के श्रम में धकेल देता है और दूसरे हिस्से को एक मशीन में तब्दील कर देता है। यह बुद्धिमत्ता पैदा करता है - लेकिन मज़दूर के लिए, मूर्खता और मन्दबुद्धि।

श्रम का उसके उत्पादों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध मज़दूर का उसके उत्पादन की वस्तुओं के साथ सम्बन्ध होता है। साधनों के मालिक का उत्पादन की वस्तुओं के साथ और खुद उत्पादन के साथ सम्बन्ध इस पहले सम्बन्ध का ही परिणाम है और उसकी पुष्टि करता है। हम इस पहलू पर बाद में विचार करेंगे। तो, जब हम पूछते हैं कि श्रम का सारभूत सम्बन्ध क्या है, तब हम उत्पादन के साथ मज़दूर के सम्बन्ध

के बारे में पूछ रहे होते हैं।

अब तक हम मज़दूर के अलगाव, उसके बेगानेपन के सिर्फ़ एक पहलू पर, यानी मज़दूर के श्रम के उत्पादों से उसके सम्बन्ध पर विचार कर रहे थे। लेकिन यह अलगाव केवल परिणाम में ही नहीं, बल्कि खुद उत्पादन की क्रिया में, उत्पादक क्रियाकलाप में भी प्रकट होता है। अगर मज़दूर उत्पादन की क्रिया में ही खुद को अपनेआप से अलग नहीं कर रहा होता, तो वह अपने श्रम की पैदावार को एक अजनबी के रूप में कैसे देखता? आखिरकार, पैदावार तो उत्पादन की क्रिया का एक सारांश ही है। तब अगर श्रम की पैदावार बेगानापन है, तो स्वयं उत्पादन को सक्रिय बेगानापन होना चाहिए, क्रियाकलाप का बेगानापन, बेगानेपन का क्रियाकलाप। श्रम की वस्तु का अलगाव, सारांश रूप में श्रम के क्रियाकलाप का अलगाव, उसका बेगानापन ही है।

तो फिर, श्रम का बेगानापन है क्या?

सबसे पहले, तथ्य यह है कि

श्रम मज़दूर के लिए पराया होता है, यानी यह उसके सहज स्वभाव का हिस्सा नहीं होता, इसलिए वह अपने को स्वीकार नहीं करता बल्कि खुद को नकारता है, सन्तुष्ट नहीं बल्कि नाखुश रहता है, अपनी शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का विकास नहीं करता बल्कि अपने शरीर को गला डालता है और दिमाग को नष्ट कर लेता है। इसलिए मज़दूर केवल अपने काम से बाहर रहने पर अपने आप को महसूस करता है। जब वह काम नहीं करता है तब सहज महसूस करता है और जब वह काम करता है तब सहज नहीं महसूस करता। इसलिए उसका श्रम स्वैच्छिक नहीं, बल्कि दबाव में किया गया होता है, यह जबरिया श्रम होता है। इसलिए यह किसी ज़रूरत की पूर्ति नहीं होता, यह महज उसके लिए परायी कुछ ज़रूरतों को पूरा करने का एक साधन होता है। इसका बेगाना चरित्र इस तथ्य से साफ़ ज़ाहिर होता है कि जैसे ही कोई शारीरिक या अन्य बाध्यता नहीं रह जाती, श्रम से इस तरह दूरी बरती जाती है, जैसे वह कोई महामारी हो।

पराया श्रम, ऐसा श्रम जिसमें मनुष्य खुद को बेगाना कर लेता है, अपने को कुर्बान करने वाला, गला डालने वाला श्रम होता है। अन्त में, मज़दूर के लिए श्रम का पराया चरित्र इस तथ्य में प्रकट होता है कि यह श्रम उसका अपना नहीं होता, बल्कि किसी और का होता है, कि इस पर उसका हक़ नहीं होता, इस श्रम के रूप में अपनेआप पर उसका नहीं, बल्कि दूसरे का हक़ होता है। जैसे धर्म में मनुष्य की कल्पना, मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय की स्वतःस्फूर्त गतिविधि, उससे स्वतन्त्र होकर व्यक्ति पर क्रिया करती है - यानी कि एक परायी, दैवी अथवा शैतानी गतिविधि के रूप में क्रिया करती है - इसलिए मज़दूर का क्रियाकलाप उसका स्वतःस्फूर्त क्रियाकलाप नहीं होता। इस पर किसी दूसरे का अधिकार होता है; इसमें वह अपने को ही खो देता है।

इसलिए, इसके परिणामस्वरूप, मनुष्य (मज़दूर) केवल अपनी पशुवत क्रियाओं - खाने, पीने, बच्चे पैदा करने, या ज़्यादा से ज़्यादा अपनी (पेज 9 पर जारी)

पहला पार्टी स्कूल

1911 का साल चल रहा था। उन दिनों फ्रांस में हजारों रूसी क्रान्तिकारी प्रवासी रहते थे। व्लादीमिर इल्यीच भी पेरिस में रहते थे। वसन्त के अन्त में वह और नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना पेरिस से कोई पन्द्रह-एक किलोमीटर की दूरी पर बसे लॉज़ूमो गाँव चले आये। इरादा यह था कि सारी गर्मियाँ यहीं बितायी जायें।

गाँव के साथ-साथ एक सड़क थी और रातों को उस पर किसानों की गाड़ियों के खड़खड़ाने का शोर मचा रहता था - किसान अपना माल बेचने के लिए पेरिस ले जा रहे होते थे।

लॉज़ूमो में लगभग सभी मकान पत्थर के बने हुए और धुएँ से बुरी तरह काले पड़े हुए थे। गाँव के पास ही स्थित छोटी-सी चमड़ा-फ़ैक्टरी की चिमनी दिन-रात धुआँ उगलती रहती थी, जिससे यहाँ तक कि घास और पेड़ भी काले लगने लगे थे। मगर खेतों में फिर भी हरियाली दिख जाती थी। व्लादीमिर इल्यीच और नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना यहाँ आराम के लिए नहीं, बल्कि काम के लिए आये थे।

अभी झुटपुटा ही था कि व्लादीमिर इल्यीच जाग गये। गर्मियों की उजली सुबह के बावजूद कमरे में अँधेरा और ठण्डक था।

तब तक नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना ने नाश्ता तैयार कर दिया था।

"श्रीमान, आज देर तक सोये रहे! इसके लिए आपको एक अंक मिलेगा," झटपट बिस्तर से उठते हुए व्लादीमिर इल्यीच ने अपनेआप से कहा और हाथ-मुँह धोकर नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना की मदद को लपके। अचानक व्लादीमिर इल्यीच के

हाथ से शककरदानी फिसल गयी। मगर उन्होंने बड़ी फुर्ती से उसे ज़मीन पर गिरने से पहले ही पकड़ लिया।

"क्यों, हूँ न असली बाज़ीगर?"

"हाँ, तीन अंक तो मिल ही सकते हैं," नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना ने जवाब दिया।

उस साल फ्रांस में भयंकर गरमी पड़ रही थी। सूरज सुबह से ही आग बरसा रहा था। दोगला झबैरला कुत्ता जीभ निकाले हाँफता गली में चहारदीवारी की छाँह में लेटा हुआ था।

"क्यों तुझे भी गरमी लग रही है?"

व्लादीमिर इल्यीच ने कुत्ते को सहलाया और फिर चमड़ा-फ़ैक्टरी के मज़दूर को नमस्ते की।

रविवार का दिन था। मज़दूर अपने नसदार हाथों को घुटनों पर रखे चहारदीवारी की छाँह में बैठा था। उसका चेहरा लम्बा, दुबला और बेहद थका हुआ था।

सड़क से एक जगमगाती, सिंगदार बग्घी गुजरी। उसमें जालीदार छतरी के नीचे एक महिला और बच्चे बैठे हुए थे। मज़दूर ने हड़बड़ाकर खड़े होते हुए सलाम किया। महिला ने भी हलके से सिर झुकाया।

"हमारे मालिक की बीवी है,"

चमड़ा मज़दूर ने आदरपूर्ण स्वर में कहा।

"जीभ कर आराम ये ही लोग कर सकते हैं," व्लादीमिर इल्यीच ने व्यंग्य किया।

मज़दूर कुछ क्षण चुप रहा, फिर विनम्रता से बोला :

"भगवान ने अगर अमीर और गरीब बनाये हैं, तो इसका मतलब है कि ऐसा ही होना भी चाहिए।"

सड़क के पार गिरजाघर की घण्टियाँ बजने लगीं। रविवार की प्रार्थना का समय हो गया था। मज़दूर ने अपनी छाती पर सलीब का चिह्न बनाया और यह बुदबुदाता हुआ गिरजाघर की ओर चल पड़ा कि दुनिया भगवान ने बनायी है, हम इसमें कोई दखल नहीं दे सकते।

"श्रीमान," पड़ोसी के लड़के ने व्लादीमिर इल्यीच से पूछा, "आप अपने स्कूल जा रहे हैं? आप क्या छुट्टी के दिन भी पढ़ाते हैं?"

लेनिन का स्कूल, जो लॉज़ूमो की सड़क के दूसरे छोर पर था, एक निराले तरह का स्कूल था, देखने में भी वह और स्कूलों की तरह नहीं था। पहले यहाँ एक सराय हुआ करती थी। पेरिस जाते हुए डाकगाड़ियाँ यहाँ रुका करती थीं। गाड़ीवान आराम करते थे, घोड़ों को दाना-पानी देते थे। मगर यह बहुत पहले की बात थी...

1911 की वसन्त में व्लादीमिर इल्यीच ने स्कूल के लिए इस भूतपूर्व सराय को किराये पर ले लिया। विद्यार्थियों ने खुद सारा कूड़ा-करकट साफ़ किया, तख्ते ठोंकर मेज़ बनायी और पड़ोसियों से माँगकर कुछ पुरानी तिपाइयाँ और कुर्सियाँ भी इकट्ठा कीं। इस तरह लेनिन का स्कूल काम करने लगा।

विद्यार्थी और कोई नहीं, बल्कि रूसी मज़दूर थे। ज़ारशाही पुलिस से छिपकर वे रूस के विभिन्न नगरों से यहाँ आये थे। और उनके अध्यापक थे व्लादीमिर इल्यीच, नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना और कुछ दूसरे साथी।

जब व्लादीमिर इल्यीच स्कूल में

पहुँचे, तो सभी विद्यार्थी अपनी-अपनी जगह पर बैठे थे। अध्यापक के कमरे में प्रवेश करते ही सब खड़े हो गये। मगर हँसी की बात यह थी कि सब नंगे पैर थे। लॉज़ूमो में गरमी इतनी असह्य थी कि जूता भी नहीं पहना जा सकता था।

ये सब जिज्ञासु और योग्य नौजवान थे। व्लादीमिर इल्यीच के व्याख्यान उन्हें बेहद पसन्द थे।

"भगवान ने अगर अमीर और गरीब बनाये हैं, तो इसका मतलब है कि ऐसा ही होना भी चाहिए," व्लादीमिर इल्यीच ने अप्रत्याशित ढंग से पाठ शुरू किया।

उनके होंठों पर व्यंग्य भरी मुस्कान थी और आँखें हँस रही थीं। विद्यार्थी आश्चर्य से मुँहबाये बैठे थे।

"ऐसा मुझसे आज एक फ्रांसीसी चमड़ा-मज़दूर ने कहा," कुछ देर रुककर व्लादीमिर इल्यीच ने स्पष्टीकरण दिया। विद्यार्थियों में उत्तेजना फैल गयी।

"अच्छा, तो यह बात है! ज़रूर कोई काहिल होगा।"

"व्लादीमिर इल्यीच, आपका यह फ्रांसीसी दकियानूस है। उसे यहाँ ले आइये, हम उसका दिमाग सुधार देंगे।"

और एक विद्यार्थी ने खड़े होकर कहा :

"मैं भी चमड़ा-मज़दूर हूँ। पर मैं सोचता हूँ कि भगवान के क़ानून हमारे किसी काम के नहीं। ज़रूरत है अमीरों को गरदनियाँ देने और नये समाज का निर्माण करने की।"

"सही कहा," आसपास सभी चिल्लाये।

विद्यार्थियों की ऐसी प्रतिक्रिया व्लादीमिर इल्यीच को अच्छी ही लगी।

"तो इसका मतलब है कि अमीरों और गरीबों का होना ज़रूरी नहीं है," उन्होंने विद्यार्थियों की बात दोहरायी और फिर बड़ी सहजता के साथ राजनीतिक अर्थशास्त्र के विषय पर आ गये। राजनीतिक अर्थशास्त्र वह विज्ञान है, जो सामाजिक उत्पादन के नियमों का अध्ययन करता है।

व्लादीमिर इल्यीच मज़दूरों को मार्क्सवाद की शिक्षा दे रहे थे। वह कह रहे थे कि मज़दूर को शिक्षित, समझदार और जानकार होना चाहिए। उसे राजनीति की अच्छी पकड़ होनी चाहिए।

क्या उस फ्रांसीसी चमड़ा-मज़दूर जैसा आदमी क्रान्ति के लिए लड़ सकता है, जो क्रदम-क्रदम पर भगवान की दुहाई देता हो और आगे कुछ न जानता हो? हमारे यहाँ रूस में भी ऐसे दकियानूस मज़दूरों की कमी नहीं है। पिछड़ेपन से क्रान्तिकारी संघर्ष में कोई मदद नहीं मिल सकती।

"मज़दूरों के लिए शिक्षा बहुत ज़रूरी है," व्लादीमिर इल्यीच कहा करते थे।

इसीलिए उन्होंने लॉज़ूमो में पार्टी स्कूल खोला था। मज़दूरों ने उसमें चार महीने पढ़ाई की और रूसी मज़दूर वर्ग के लिए क्रान्ति में निष्ठा और ज्ञान का सन्देश लेकर स्वदेश लौटे।

फ्रांस के उस साधारण और नगण्य-से गाँव, लॉज़ूमो, को आज सारी दुनिया जानती है। और यह इसलिए कि वहाँ लेनिन ने पहला पार्टी स्कूल खोला था।

(मरीया प्रिलेज़ायेवा की पुस्तक 'लेनिन कथा' का एक अंश)

कय्यूर के उन चार शहीदों की गाथा जिन्होंने देश की आज़ादी और गरीब जनता की बेहतर ज़िन्दगी के लिए संघर्ष में अपना जीवन न्योछावर कर दिया

जज ने अपना फ़ैसला पढ़ना समाप्त किया और अदालत की उस दिन की कार्रवाई की समाप्ति की घोषणा कर दी। बाईस किसानों की हथकड़ियाँ खोल दी गयीं। वे वहीं खड़े रहे, गये नहीं। राजाराव के चेहरे की मुस्कुराहट गायब हो गयी। उसका लाल चेहरा काला पड़ गया। एक-एक क्रम उसके लिए भारी पड़ने लगा। "मुझे पता था, वे लोग न्याय की हत्या कर देंगे।" पिल्लई ने कहा, "हम लोग अपील करेंगे। घबराओ नहीं।" वह अपने होटल के लिए चल पड़ा।

उस सुबह कैदियों के पीछे-पीछे पुलिस की एक गाड़ी आयी थी। उसमें सशस्त्र सिपाही थे। अब चार को दूसरों से अलग करना होगा। कुट्टी कृष्णन को भी। किसान एक-दूसरे से मानो चिपक गये थे, इस भय से कि कुछ नयी बात हो जायेगी। कुट्टी कृष्णन को अब बक्र के साथ हथकड़ी लगायी गयी थी। बाल संघ और वालण्टियर ब्रिगेड के नेता को। अब वे एक साथ नहीं रह सकते थे। फाँसी के फन्दे के लिए कुट्टी कृष्णन अभी बहुत छोटा था। सिपाही उन्हें अलग करने आये। कुट्टी कृष्णन, अब बक्र की बाँहों को पकड़कर झूल गया। "एडन-एडन" (भइया-भइया) कहकर रो पड़ा। सिपाही ने हथकड़ी को निकाल दिया और दूसरी हथकड़ी पहना दी। "भइया-भइया, मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा।" अब बक्र शून्य में देखता खड़ा रहा। उसके आँसू उसकी छाती पर गिर रहे थे। मोटा, जिसका हृदय फौलाद का था, दीवार से टिककर खड़ा हो गया। उसने अपनी बाँहों में चेहरा छुपा लिया और सुबकने लगा। मास्टर जी मुस्कुराने की कोशिश कर रहे थे। अप्पू और चिरुकण्डन ने पूछा, "अब वे हम लोगों को अलग ले जायेंगे सर?"

उनके छात्र कुछ कह रहे हैं - वे बहुत छोटे थे...दस साल पहले की बात है...वे क्या कह रहे हैं? आप बहुत बीड़ी पीते हैं, है न सर? नहीं अप्पू, नहीं चिरुकण्डन। अब मैं बीड़ी नहीं पीता। क्या? नहीं?

"क्या वे हम चारों को अभी ही ले जायेंगे सर?" अप्पू और चिरुकण्डन ने अपना सवाल दोहराया।

मास्टर जी के गले में कुछ अटक गया। उन्होंने उसे घोंटते हुए कहा, "नहीं। थोड़ी देर के लिए हम लोग साथ-साथ रहेंगे।"

किसी ने पूछा, "क्या पाँच साल सज़ा काटने के बाद उन्हें फाँसी दी जायेगी वकील साहब।"

राजाराव ने बताया ऐसा नहीं होता। जब दो सज़ाएँ एक साथ सुनायी जाती हैं तो मौत की सज़ा ही दी जाती है।

"अच्छा होगा कि जिन लोगों को मुक्त कर दिया गया, वे घर चले जायें।"

ब्रिटिश राज के आखिरी दशक में पूरे देश में किसानों और मज़दूरों के आन्दोलनों की बाढ़ आ गयी थी जिसके बारे में ज़्यादातर लोग बहुत ही कम जानते हैं क्योंकि पढ़ाये जाने वाले इतिहास में इनकी कोई चर्चा नहीं होती। यहाँ हम उत्तरी केरल में मालाबार इलाके के कसरगोद तालुक के एक गाँव में हुए किसान विद्रोह पर आधारित निरंजन के प्रसिद्ध उपन्यास 'चिरस्मरणीय' का एक अंश पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

ब्रिटिश सरकार के पिट्टू ज़मींदारों के शोषण-उत्पीड़न से त्रस्त और उनके कर्ज़ के जाल में फँसकर तबाह किसानों और गरीब मज़दूरों ने सामन्तवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ ऐतिहासिक लड़ाई छेड़ी थी। यह उस गाँव के किसानों के न्यायोचित संघर्ष की कहानी है। यह कय्यूर के उन चार शहीदों की गाथा है जिन्होंने देश की आज़ादी और गरीब जनता की बेहतर ज़िन्दगी के लिए संघर्ष में अपना जीवन न्योछावर कर दिया था। 29 मार्च 1943 को कय्यूर के चार बेटों - अप्पू, चिरुकण्डन, कुहाम्बू और अबु बक्र को फाँसी दी गयी थी।

है न सर। चिरुकण्डन ने कहा।

सचिव अगले क्रम के बारे में सोच रहा था।

"हाँ ठीक है।"

"और उनका खर्चा।"

"आपके कुछ लोग बाहर हैं।" राजाराव ने कहा, "वे लोग सारी व्यवस्था कर देंगे। चिन्ता मत करें।"

"चलो-चलो।" सिपाही चिल्लाया। अड़तीस कैदियों को अब पैदल नहीं चलना पड़ा, पुलिस की गाड़ी थी।

लोग उनके करीब आ रहे थे। किसान नहीं, कय्यूर तो बहुत दूर था। ये लोग शहर के लोग थे...वे जानते थे कि दुख क्या होता है...हो सकता है उनके बीच जासूस भी हों। फूलों के बीच जैसे काँटे होते हैं।

गाड़ी में सबसे पहले उन चार लोगों को चढ़ाया गया। अप्पू, चिरुकण्डन, कुहाम्बू, अबु बक्र को। फिर कुट्टी कृष्णन को। उसके बाद मास्टर जी को और तब दूसरों को। जिन किसानों को रिहा कर दिया गया था, वे भी चढ़ने की कोशिश कर रहे थे।

"...एई...अकल नहीं है क्या? बन्द करो, दरवाज़ा बन्द करो।"

"इन्कलाब..." अचानक कोई बोल उठा।

"ज़िन्दाबाद" सिर्फ़ एक आवाज़ आयी वह भी रुकी हुई-सी।

"इन्कलाब..." इस बार आवाज़ बुलन्द थी।

"ज़िन्दाबाद..." सैकड़ों कण्ठों से आवाज़ आयी।

किसान, शहर के लोग और गाड़ी में बैठे कैदी भी एक साथ बोल पड़े।

"सरकारी दमन - मुर्दाबाद"

"साम्राज्यवाद - मुर्दाबाद"

"इन्कलाब ज़िन्दाबाद"

पुलिस भीड़ को हटाने की कोशिश कर रही थी। गाड़ी आगे बढ़ी, कुछ आवाज़ें आयीं।

"कय्यूर के कामरेडों को लाल सलाम।"

गाड़ी तेज़ हो गयी। "लाल सलाम कामरेड।"

...ऊँची दीवारों के पीछे की जेला जेलर उनसे बात करने आया।

"आप लोग अपील करने तो जा ही रहे होंगे?"

"जी हाँ।"

"यही होता है, आप लोगों को ज़्यादा दिक्कत नहीं होती। पर लड़ाई का समय है ना।"

किसी जवाब की ज़रूरत नहीं थी। हाँ एक लड़ाई जारी थी। मौत की सज़ा पाये चारों कैदियों को अलग कोठरी में डाल दिया गया। कुट्टी कृष्णन को कहीं और रखा गया। बाक़ी को एक कोठरी में रखा गया।

"कुछ दिन और यहाँ रहना है।" मास्टर जी ने जेलर से कहा, "हम लोग क्या एक साथ नहीं रह सकते।"

"साँरी, क्रानून इसकी इजाज़त नहीं देता। हम क्या कर सकते हैं?"

अँधेरा हो गया। बातचीत धीमी पड़ गयी। सभी ऊँघ रहे थे। कन्नन ने आहिस्ता-आहिस्ता गाना शुरू किया। यह गाँव की एक औरत के बारे में था, जिसे बच्चों के लिए मनौती मानने के बाद एक बेटा पैदा हुआ। उसकी आवाज़ दीवारों को पार करती हुई अप्पू और चिरुकण्डन तक भी पहुँची। "आज बीड़ी नहीं चाहिए?" गार्ड आया था।

मोटा आज नहीं था, जो बीड़ी बाँटता। किसी ने जवाब नहीं दिया। मास्टर जी ने हाथ बढ़ाया, फिर वह चला गया।

...कम से कम एक सप्ताह और मास्टर जी ने सोचा। हर किसी के घर वाले को यहाँ बुलाने का इन्तज़ाम करना होगा। पर, अगली ही सुबह उन्हें भारी सुरक्षा व्यवस्था के बीच कन्नानूर ले जाया गया।

होसदुर्ग, नीलेश्वर, तेजस्विनी, चरवातूर स्टेशन, त्रिकरापुरा, रेलगाड़ी बढ़ती जा रही थी।

...वह एक बड़ी जेल थी। कहना मुश्किल था कि कितनी संख्या अधिक थी। चोरों की, डाकुओं की या देशभक्तों की। वहाँ कुछ ऐसे किसान भी थे जो तेलीपरम्बा के किसान सम्मेलन में शरीक हुए थे। उन्होंने कय्यूर के लोगों का स्वागत किया। उत्सुकतापूर्वक खबरों की जानकारी हासिल की। लगा कि एक बड़ा परिवार है।

पर, यहाँ भी नियम-क्रानून थे। मौत की सज़ा पाये चारों लोगों को अलग कोठरी में रखा गया। उन्हें बन्द कोठरी में दिन-रात रहना पड़ता था, बाक़ी लोगों को दूसरे कैदियों के साथ

हाज़िरी या काम के समय मिलने-जुलने की अनुमति थी। गार्ड कड़े थे, पर दीवारें भी बोलती थीं। गार्ड भी कभी-कभी अचानक कुछ कह देते, या कोई समाचार सुना देते, फिर चले जाते। छोटी-छोटी पर्चियाँ यहाँ-वहाँ पहुँच जातीं...

सिर्फ़ मद्रास हाई कोर्ट में अपील की गुंजाइश थी। सुनवाई की लम्बी तारीख तय हुई, पर जजों ने एक बार तय कर लिया तो फ़ैसला तुरन्त आ गया। फ़ैसला निर्विरोध था। हाई कोर्ट ने कहा कि सेशन जज का फ़ैसला सही था।

...जब ख़बर मिली तो अप्पू ने चिरुकण्डन से पूछा जो पास की कोठरी में था। "तो मुक़दमे का सारा इज़ज़त अन्त में ख़त्म हुआ?"

अभी ख़त्म नहीं हुआ था। कय्यूर बचाव समिति लन्दन की प्रीवी कौंसिल तक गयी। लड़ाई के ज़माने में भारतीय संघीय अदालत सबसे ऊँची अदालत थी। प्रीवी कौंसिल ने कय्यूर का मामला उसे सौंप दिया।

संघीय अदालत की नज़र में मद्रास हाई कोर्ट का फ़ैसला सही था।

"अन्ततः सब समाप्त हुआ।" अप्पू ने कहा।

नहीं, अभी भी समाप्त नहीं हुआ था। बचाव समिति का एक वकील एक दिन उन चारों के पास आया और उनसे एक जगह हस्ताक्षर करने को कहा।

"अब क्या करने जा रहे हैं।" चिरुकण्डन ने पूछा।

"हम लोग दया की याचना करेंगे।"

"दया की?" अप्पू गरज उठा।

"नहीं चाहिए हम लोगों को दया। आप जा सकते हैं।"

"नहीं कामरेड...मैं..."

"आप हम लोगों को इज़्जत के साथ मरने देंगे या नहीं!"

वकील चला गया। फिर मास्टर जी ने बाहर के लोगों के साथ गोपनीय तरीके से बातचीत की। पर्चियाँ बाहर से आयीं-गयीं।

मास्टर जी ने अप्पू और दूसरों से धैर्य के साथ विचार किया।

"अगर तुम इस तरह देखो, हम लोगों को इस अदालत पर क्या विश्वास था? फिर भी हम उसके सामने खड़े हुए और मुक़दमे की कार्रवाई में

शामिल हुए, ठीक है ना? यह सिर्फ़ एक नियमित काम था। हमारा उद्देश्य क्या है? क्या उसकी प्राप्ति के लिए हमें तुम्हारी ज़रूरत नहीं है? दया की माँग करने में कुछ भी अपमानजनक नहीं है। याद रहे हमें अभी भी क्या हासिल करना है। यह मत भूलो कि सारे देश के लोग तुम्हारी रिहाई के लिए आन्दोलन कर रहे हैं।"

मास्टर जी जीत गये। चारों ने अपील पर हस्ताक्षर कर दिये।

कुट्टी कृष्णन को बेजवाड़ा जेल भेज दिया गया। कय्यूर का नाम पूरे देश में और दुनिया के प्रमुख शहरों तक पहुँच गया। लोगों ने इन चारों को बचाने के लिए संघर्ष शुरू कर दिया।

शासक टस से मस नहीं हुए। सरकार चुप थी। उस बड़ी लड़ाई के समय जनता के सामने झुकना कमजोरी की निशानी होती और सारे हिन्दुस्तान के लोग गर्वनर के आदेश की उम्मीद लगाये बैठे थे।

...भारत का राजनीतिक माहौल मेघाच्छन्न था। एक तूफ़ान उमड़ रहा था। बिजलियाँ चमक रही थीं और बादल गरज रहे थे। एक दिन नौ अगस्त को बादल फटा और घनघोर बारिश शुरू हो गयी। गलियों में लोगों की बाढ़ आ गयी। उसने अहिंसा के जादुई परदे को हटा दिया और अपना उग्र रूप दिखाया। सरकार ने उसे रोकने की कोशिश की। संघर्ष की लहरें जेलों की दीवारों से टकराने लगीं। अन्दर के लोग सबकुछ सचेत होकर देख-सुन रहे थे।

...जेल लोगों से भर गयीं। मद्रास में अंग्रेज़ गवर्नर ने दया की याचिका की अनदेखी कर दी।

"अन्ततः सब समाप्त हो गया।" अप्पू ने चिरुकण्डन से कहा।

वह हँसा, "हाँ अप्पू अब हम एक साथ फाँसी के फन्दे तक जायेंगे। एक-दूसरे का हाथ पकड़ें।" पर सरकार व्यस्त थी। उसे उन्हें फाँसी देने की फुरसत नहीं थी। उन्हें इन्तज़ार करना पड़ा। अप्पू को एक रात विचित्र सपने आये। लोग जेल की दीवारों को तोड़कर कैदियों की हथकड़ियाँ खोल रहे हैं। फिर वे पूरे देश में घूम-घूमकर अंग्रेज़ अफ़सरों को पकड़ रहे हैं। उनके उन देशी नौकरों को पकड़ रहे हैं, जिन्होंने अपनी आत्माएँ बेच दी हैं। ज़मींदारों और पूँजीपतियों को पकड़ रहे हैं और उन्हें कालकोठरियों में बन्द कर रहे हैं।

अप्पू ने अपना सपना चिरुकण्डन को अपनी कोठरी की सलाखों के पीछे से सुनाया। "उनमें नम्बियार भी था। वह गिड़गिड़ा रहा था, 'अप्पू मैंने तुम्हें रात्रि पाठशाला शुरू करने की अनुमति दी थी ना? मुझे छोड़ दो भाई।' पर हम चारों में तुम, कुहाम्बू (पेज 15 पर जारी)

कयूर के उन चार शहीदों की गाथा...

और अबु बक्र अपने कन्धों पर बन्दूक रखे वहाँ से चले गये। कन्नन गा रहा था और आगे-आगे झण्डा लिये चल रहा था। मास्टर जी और पण्डित जी हमसे बहुत पीछे थे। 'भागो नहीं लड़को, भागो नहीं, आहिस्ता- आहिस्ता'... और मेरी नींद टूट गयी।"

चिरुकण्डन ने सुनकर कहा, "सपने वैसे ही आते हैं, जैसा तुम सोचते हो।"

इस सपने की कहानी कुन्हाम्बु से होते हुए अबु बक्र तक पहुँची। यह एक सपना मात्र था, पर सुनकर उनके मन में उम्मीद पैदा हुई।

"शायद हम चारों यह देखने के लिए नहीं रहेंगे" अबु बक्र ने कहा, "पर ऐसा होगा। बस यही अर्थ है इस सपने का। और नम्बियार भी उसी तरह गिड़गिड़ायेगा, जैसा तुमने अपने सपने में देखा है।"

कुन्हाम्बु ने अबु बक्र की बातें चिरुकण्डन तक पहुँचाईं जिसने अप्पू को बता दी। बारिश रुक गयी। लोगों की बाढ़ उतर गयी। जब लोग एकजुट नहीं रहे और कोई नेता नहीं था, तब सरकार को आन्दोलन कुचलने में आसानी हुई। फाँसी का दिन तय हो गया। फिर उसे आगे बढ़ा दिया गया। सरकार ने महसूस किया कि तिथि की पूर्व घोषणा मूर्खता होगी। वह डर गयी थी। अप्पू खीजा हुआ और गुस्से में था।

"क्यों नहीं सबकुछ जल्दी समाप्त कर देते हैं।"

... ..

शाम ढल रही थी। बस एक रात और ढलने की देर है और फिर सुबह हो जायेगी। जेलर के जूतों की आवाज़ पास आती सुनायी पड़ी। ठक-ठक-ठक।

"आज रात को क्या खाना चाहोगे?"

"आज रात को?"

"तुम लोग जो चाहो हम तैयार कर सकते हैं।"

"हमें कुछ नहीं चाहिए।"

"तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है? हम उसे पूरी करने की कोशिश करेंगे।"

"सुना अप्पू? और तुम क्या चाहते हो कुन्हाम्बु? अबु बक्र?"

"बोलो यहाँ ये लोग उसे पूरा करेंगे।"

अबु बक्र का अट्टहासा एक व्यंग्यात्मक आवाज़, "हम अपने मरने से पहले साम्राज्यवाद का नाश चाहते हैं। चिरुकण्डन उनसे पूछो तो, वे हमारे लिए ऐसा कर सकते हैं।" अप्पू और चिरुकण्डन मास्टर जी के बारे में सोच रहे थे। ...क्या मास्टर जी से भेंट सम्भव है?

"एक और इच्छा है कुन्हाम्बु? क्या हम लोग उनसे कहें अबु बक्र?"

"बोलो कामरेड बोलो।"

"जेलर साहब हमारी एक ही इच्छा है। मास्टर जी से भेंट करने की।"

लेकिन जेल का कानून।

"वह तो एक कैदी है! पता नहीं सम्भव हो पायेगा या नहीं। फिर भी सुपरिण्टेण्डेंट से पूछता हूँ।"

नज़दीक आ रहे जूतों की आवाज़। क्या सुपरिण्टेण्डेंट आ रहा है?

दो सशस्त्र गार्डों के बीच मास्टर जी आ रहे थे। दोनों ओर से हथकड़ियाँ लगी हुई थीं।

जेलर सामने आया, "मिलने की अनुमति मिल गयी। पर ज़्यादा देर तक नहीं।"

"क्या आप थोड़ा हटकर खड़े हो सकते हैं।" चिरुकण्डन ने पूछा। उसकी आवाज़ काँप रही थी।

"माफ़ करना। हमें यहीं रहने का आदेश है।"

"क्योंकि हम लोग यहाँ कोई और साज़िश रच सकते हैं। यही बात है ना?" अबु बक्र ने पूछा।

"उन्हें रहने दो अबु बक्र।"

चारों कोठरियों के बीच में मास्टर जी खड़े थे और मुस्कुराने की कोशिश कर रहे थे।

कुछ समय चुप्पी में ही बीत गया। उन्हें बातचीत करनी चाहिए। उनका छात्र चिरुकण्डन बोला।

"कल सुबह हम लोग जा रहे हैं सर।"

और उनका छात्र अप्पू बोला। "भूलियेगा नहीं सर।"

ओह ये लड़के क्यों मिलना चाहते थे? और कुन्हाम्बु और अबु बक्र। मास्टर जी ने सबको बारी-बारी से देखा।

नहीं, कहने के लिए कुछ नहीं था। कुछ भी कहना असम्भव था।

रुलाई फूट पड़ रही थी। पर नहीं,

इनकी विदाई ऐसे नहीं होनी चाहिए।

"अप्पू-चिरुकण्डन साथ-साथ रहना ... सब लोग ... कुन्हाम्बु-अबु बक्र..."

"बिलकुल। हम लोग साथ-साथ रहेंगे।"

मास्टर जी ने दाहिने हाथ की मुट्ठी ऊपर उठायी। हथकड़ियाँ बज उठीं।

"लाल सलाम कामरेड।"

"लाल सलाम सर।"

"लाल सलाम कामरेड।"

वह एक काली रात थी। जेल की कोठरियों के बाहर सितारों की रोशनी फीकी-सी थी। रह-रहकर सन्तरी की आवाज़ आती -- "सब ठीक है।" और घण्टे की आवाज़ आठ बजे, नौ बजे, दस...

समय बीत रहा था। कोई सोया नहीं। सारी दुनिया के बारे में वे सोचते रहे। कयूर -- फिर स्तालिनग्राद, लन्दन और दिल्ली...

"चिरुकण्डन, कुन्हाम्बु क्या कर रहा है? अबु बक्र से कहो कुछ बातचीत करो।"

"कुछ भी।"

"किस बारे में?"

उन्होंने अपने बचपन के बारे में बातचीत की। पुरानी यादों के बारे में।

चिरुकण्डन उन दिनों के बारे में सोच रहा था, जब वह किसान सम्मेलन की तैयारियाँ कर रहा था। सिपाही सुब्बैया के बारे में -- लगता है उसकी बीबी होगी और बच्चे। पर वह विदेशी सरकार के पहरे का कुत्ता था। इसीलिए कुत्ते की मौत मरा। उन्होंने उसे नहीं मारा। पर उनकी मौत का इन्तज़ाम इसी बहाने किया गया है कि उन्होंने ही उसे...। कुन्हाम्बु...संघ के कार्यालय के लिए थोड़ी-सी ज़मीन देने का सिला उस बेचारे को क्या मिला। और अबु बक्र को ज़ोर-ज़ोर से रोने की इच्छा हुई।

"क्या अप्पू...क्या हुआ।"

"कुछ नहीं-कुछ नहीं।"

"किसी को खेद नहीं होना चाहिए। कल इतिहासकार लिखेंगे। वे फाँसी के तख्ते पर बहादुर की तरह चढ़ गये।"

"मुझे और एक बात का अफ़सोस है चिरुकण्डन।"

"क्या है अप्पू?"

"हममें से कोई गाना नहीं जानता। नहीं तो हम लोग कल एक साथ गाते

हुए जाते।"

"कोई बात नहीं है। हम लोग 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते हुए जायेंगे।" कुन्हाम्बु अपने भाइयों के बारे में सोच रहा था। फिर वह अपने दूसरे भाइयों के बारे में सोचने लगा। देश के हज़ारों भाइयों के बारे में। अगर उसे जीने का और मौक़ा मिले तो फिर वह सबकुछ करेगा, इसी रास्ते को अख़्तियार करेगा।

अबु बक्र कुट्टी कृष्णन को याद कर रहा था। "कामरेड" काफ़ी नहीं था। वह अबु बक्र को "एट्टन" (भइया) भी कहता था। जब देश आज़ाद होगा, वह मुक्त हो जायेगा। वह कयूर लौटेगा और वालण्टियर ब्रिगेड का नेतृत्व करेगा।...

"चिरुकण्डन याद है तुम हमेशा इस डर से किनारे ही रहते थे कि मछलियाँ काट लेंगी।"

"हाँ।"

...आधी रात बीत चुकी थी। सन्तरी लैम्प लेकर घूम रहे थे। कोई सोया क्यों नहीं है? मास्टर जी, कन्नन, कोई नहीं सोया है?

सुनो। कोई गा रहा है। कन्नन। उसकी आवाज़ चारों कोठरियों में पहुँचती है। और आवाज़ें हर कोई गा रहा है। गाने की आवाज़ वहाँ से क्यों नहीं आ रही हैं जहाँ सामान्य अपराधी हैं? अपराधी? जो हो रहा है क्या उसे वह नहीं समझते? क्या वे इस गीत का अर्थ नहीं समझते?

सुनो। एक और आवाज़। एक और। कौन है यह?

"अप्पू सुन रहे हो? कोई सोया नहीं है। वे सब गा रहे हैं, हम लोगों के लिए। हमारे जाने से पहले।" कुन्हाम्बु अपनी पीड़ा छुपाने के लिए चिल्ला पड़ा।

अबु बक्र ने भर्षयी आवाज़ में गाना शुरू किया। बोल रहा था या गा रहा था? या अपनी ब्रिगेड को आदेश दे रहा था? लेफ़्ट राइट, लेफ़्ट राइट, लेफ़्ट राइट...। या उसके दिल की गहराइयों से कोई शोक गीत उठ रहा था।

कोई अप्पू की कोठरी में गा रहा है। किसी औरत की आवाज़ है। धीमी ममतामयी आवाज़ में गा रही है...

"सो जा मेरे बच्चे..."

"अम्मा।"

"मेरे प्यारे बच्चे..."

"अम्मा...अम्मा..."

"अप्पू...एई अप्पू..."

डिंग-डॉंग, डिंग-डॉंग...सिर्फ़ दो घण्टे बचे हैं। जेल आज सोया नहीं है। एक कौआ बोलता है। दीवारों के पीछे पेड़ों पर...काँव-काँव...

उन आवाज़ों पर कोई असर नहीं पड़ता। गीत गा रही आवाज़ों पर... अबाध अनन्त गीतों पर...

ठण्डी हवा चल रही है। पौ फट रही है। आखिरी बारा धीरे-धीरे...

और उसकी साड़ी काले रंग की है।

चिरुकण्डन उठ खड़ा होता है।

"उठो कामरेड। सुबह हो गयी..."

गार्ड आते हैं। जेलर। वार्डन और डिस्ट्रिक्ट कलक्टर।

"मार्च।"

चारों दृढ़ क्रदमों से आगे बढ़ते हैं। "हाल्ट!"

वार्डन अपनी घड़ी देखता है। पाँच मिनट बाक़ी हैं। हथकड़ियाँ खोल दी जाती हैं।

"मत छुओ हम लोगों को!"

चिरुकण्डन दृढ़ आवाज़ में कहता है। "हम खुद चढ़ेंगे इस पर।"

"उन्हें जाने दो।" कलक्टर कहता है।

सशस्त्र गार्ड अपनी बन्दूकों को उन पर तान देते हैं, एहतियात के तौर पर।

दो मिनट और।

जेल की कोठरियों से आवाज़ें और तेज़ हो जाती हैं, और गीत और तेज़ तथा स्पष्ट।

...कलक्टर अप्रसन्नता जाहिर करता है। वार्डन फिर अपनी घड़ी देखता है। नीचे एक गड़ढा है। उसके ऊपर चार तख्ते। ऊपर फन्दे झूल रहे हैं।

"उनके चेहरे ढँक दो।"

"हमें नक्राब नहीं चाहिए।"

हर गरदन में फन्दा पहना दिया जाता है।

चिरुकण्डन ज़ोर से चिल्लाता है।

"इन्कलाब..."

और अप्पू, कुन्हाम्बु, अबु बक्र जवाब देते हैं --

"जिन्दाबाद..."

"साम्राज्यवाद मुर्दाबाद"

"इन्कलाब जिन्दाबाद"

(पेज 4 पर जारी)

किसान आंदोलन

(पेज 16 से आगे)

शिवराज चौहान, रमन सिंह, सिन्धिया, वाड़ा, जाखड़, जैसे फ़ार्मरों की लड़ाई है। यहाँ स्पष्ट करना है कि इसका अर्थ यह नहीं है कि किसानों-खेत मज़दूरों की तात्कालिक माँगों के लिए कोई संघर्ष नहीं हो सकता। हो सकता है, ऐसी माँगों के साथ जो किसानों-खेत मज़दूरों की एकता को मजबूत करें और साथ में उन्हें शहरी मज़दूरों-निम्न मध्य वर्ग के

खिलाफ़ खड़ा न करें। किन्तु इन माँगों की चर्चा अलग से। यहाँ लाभकारी मूल्य का सवाल हमारी चर्चा का मुख्य विषय है।

लेकिन यह वैकल्पिक रोज़गार मिले कहाँ? इज़ारेदार पूँजीवाद अब उद्योगों-सेवाओं को और विस्तार देने में सक्षम नहीं रहा, अति-उत्पादन की समस्या से जूझ रहा है, बाज़ार में खरीदारों की कमी से पहले ही लगे उद्योगों को 70% से

अधिक क्षमता पर नहीं चला पा रहा, नया निवेश लगातार घट रहा है, तो और व्यापक औद्योगीकरण कैसे करे? वह तो पहले ही इतने ही उद्योगों में आधुनिक तकनीक के प्रयोग और ऑटोमेशन से श्रमिकों की संख्या कम कर मुनाफ़ा बढ़ाने के तरीक़े ढूँढ़ रहा है। इसलिए अभी भी बहुत सारे लोगों को इस अलाभकारी/अनुत्पादक छोटी खेती में उलझाकर रखे हुए हैं, ताकि बेरोज़गारी

की समस्या अपने असली विकराल रूप में सामने न आये। लेकिन इस अति-उत्पादन का कारण यह नहीं कि समाज की ज़रूरतें पूरी हो गयी हैं। पूँजी मालिकों के मुनाफ़े के बजाय अगर सामाजिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन मक्रसद हो तो इसको बहुत गुना बढ़ाने की ज़रूरत होगी जिससे बेरोज़गारों की इस बड़ी फ़ौज को रोज़गार मिल सकता है। लेकिन उसके लिए पहले

निजी मालिकाने पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़कर सामूहिक मालिकाने पर आधारित समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करनी पड़ेगी।

दूसरा कोई विकल्प नहीं है, इस लड़ाई में जुटने के बिना किसानों के दुःख-दर्द के लिए सारी हमदर्दी-आँसू झूठे हैं!

किसान आंदोलन : कारण और भविष्य की दिशा

मुकेश

गाँव की खेती से जुड़ी अधिकांश आबादी की जिन्दगी में पिछले कुछ सालों से भयंकर संकट छाया हुआ है जिस पर इनका आक्रोश समय-समय पर विभिन्न रूप से प्रकट होता रहता है। पहले यह किसानों-खेत मजदूरों की बढ़ती आत्महत्याओं के रूप में प्रकट हो रहा था। फिर यह विभिन्न राज्यों की तुलनात्मक रूप से सम्पन्न मानी जाने वाली किसान जातियों द्वारा आरक्षण की माँग के रूप में सामने आया। और अब यह महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, आदि राज्यों में किसान हड़ताल के रूप में सामने आया है। इन राज्यों में पहले तो बीजेपी-संघ ने इस आक्रोश को अपने किसान संगठन द्वारा नियन्त्रित ढंग से निर्देशित और हड़पने का प्रयास किया। आन्दोलन के बढ़ने पर इस संगठन से वार्ता और समझौते का नाटक कर आन्दोलन को वापस लेने की घोषणा भी करा ली गयी। लेकिन इससे किसान समुदाय का गुस्सा और भड़क उठा और आन्दोलन तीव्र हो गया। तब इसे पुलिस दमन से कुचलने का प्रयास किया गया, जिसमें पुलिस की गोली से मन्दसौर में 6 आन्दोलनकारियों की मृत्यु हो गयी। इसके बाद मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज चौहान द्वारा उपवास के नाटक से लेकर मृतकों को मुआवजा, न्यूनतम समर्थन मूल्यों पर कृषि उत्पादों की खरीद, किसानों को कर्ज पर ब्याज में छूट, आदि घोषणाओं से आक्रोश को शान्त करने की कोशिश जारी है।

किसान समुदायों में इस तीव्र असन्तोष-आक्रोश का तात्कालिक कारण नोटबन्दी और अच्छे मानसून से फसलों के रिकॉर्ड उत्पादन के संयुक्त असर से कृषि उत्पादों के किसानों को मिलने वाले बिक्री मूल्य में आयी तीव्र गिरावट है। नोटबन्दी से पैदा नक़दी के अभाव में भी किसानों ने किसी तरह उधार के सहारे जुताई, बीज, खाद की व्यवस्था कर फसल बुवाई की थी। लेकिन उस समय से ही सब्जी, फल, फूल, आलू से लेकर जो भी फसलें बाज़ार में आयीं उनके बिक्री मूल्य में भारी कमी हुई। कुछ समय तक तो नक़दी की कमी के नाम पर मण्डियों में आढ़तियों ने फसल खरीदने से ही मना कर दिया और गरजबेचवा किसानों की मजबूरी में की गयी बिक्री पर मनमाने दाम दिये, जिसका भुगतान भी नोटों की कमी के नाम पर बहुत देर से किया गया या बैंक के चेक दिये गये जिन्हें खते में जमा करने के बाद पैसा निकालने में किसानों को भारी तकलीफ़ हुई। इसके बाद बाज़ार में आयीं सरसों, तूर दाल, सोयाबीन, गेहूँ के दाम भी इसी तरह तेज़ी से गिरे। सरकार ने वादे के खिलाफ़ न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदारी की व्यवस्था नहीं की। उत्तर प्रदेश में बीजेपी सरकार ने 20 लाख टन गेहूँ खरीदने की घोषणा की थी लेकिन खरीदा गया सिर्फ़ 2 लाख टन। महाराष्ट्र में तूर दाल की खरीदारी ही सरकार ने कुछ दिन बाद ही पूरी तरह बन्द कर दी और किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य से 30-40%

कम दामों पर आढ़तियों को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह भी आरोप लगा कि असल में सरकारी एजेंसियों ने किसानों से दाल खरीदी ही नहीं, बल्कि इन आढ़तियों ने ही किसानों से 3-4 हजार रुपये कुन्तल पर खरीदी गयी दाल को सरकारी एजेंसियों को 5050 रुपये कुन्तल के समर्थन मूल्य पर बेचकर तगड़ा मुनाफ़ा कमाया। इससे भी किसानों में तीव्र असन्तोष पैदा हुआ।

एक और तात्कालिक कारण है मवेशियों के व्यापार पर पिछले सालों में लगायी गयी सरकारी रुकावटें और किसानों-मवेशी व्यापारियों पर पुलिस-प्रशासन के संरक्षण में शासक दल और संघ के गुण्डों के हमले और पिटाई-हत्याएँ। बड़ी संख्या में गरीब किसान और खेत मजदूर अतिरिक्त आमदनी के लिए बिक्री के लिए पशु पालते हैं। साथ ही अनुत्पादक पशुओं की बिक्री भी किसानों के लिए जरूरत के समय सहायक होती है। लेकिन पिछले सालों की इन घटनाओं ने पशु व्यापार को अत्यन्त सीमित कर दिया है और क्रीमतेँ बहुत नीचे आ गयी हैं। इसने भी किसानों-खेत मजदूरों के जीवन में मुसीबत-तकलीफ़ को बढ़ाया है।

लेकिन इन तात्कालिक कारणों ने जिस आग में घी का काम किया है उस आग के सुलगते चले आने के कारणों को समझने के लिए हमें वर्तमान उत्पादन सम्बन्धों में कृषि की स्थिति को और गहराई से समझने की आवश्यकता है। सबसे पहले तो हमें इस ग़लत समझ से छुटकारा पाना होगा कि किसान नाम का कोई एकरूप समरस वर्ग है, जिसमें सब किसानों के एक समान आर्थिक हित हैं। 2011 के सामाजिक-आर्थिक सर्वे तथा 2011-12 की कृषि जनगणना के अनुसार गाँवों के कुल 18 करोड़ परिवारों में से 30% खेती, 14% सरकारी/निजी नौकरी व 1.6% ग़ैर कृषि कारोबार पर निर्भर हैं; जबकि बाक़ी 54% श्रमिक हैं। खेती आश्रित 30% (5.41 करोड़) का आगे विश्लेषण करें तो इनमें से 85% छोटे (1 से 2 हेक्टेयर) या सीमान्त (1 हेक्टेयर से कम) वाले किसान हैं। बाक़ी 15% बड़े-मध्यम किसानों के पास कुल ज़मीन का 56% हिस्सा है। ये 85% छोटे-सीमान्त किसान खेती के सहारे कभी भी पर्याप्त जीवन निर्वाह योग्य आमदनी नहीं प्राप्त कर सकते और अर्ध-श्रमिक बन चुके हैं। किसानों के सैम्पल सर्वे 2013 का आँकड़ा भी इसी की पुष्टि करता है कि सिर्फ़ 13% किसान (अर्थात् बड़े-मध्यम) ही न्यूनतम समर्थन मूल्य से फ़ायदा उठा पाते हैं। मोदी सरकार के आने के बाद न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद और भी कम हुई है तथा हाल की खबरों के अनुसार सिर्फ़ 6% किसान ही इसके दायरे में आ पाते हैं। सैम्पल सर्वे के ही आँकड़ों के अनुसार देश की लगभग 60% किसान आबादी कर्ज से ग्रस्त है।

अभी सभी प्रचार माध्यम, अर्थशास्त्री, किसान संगठन और राजनीतिक दल पूरे किसान असन्तोष को सिर्फ़ एक बिन्दु अर्थात् न्यूनतम समर्थन

मूल्य के सवाल तक सीमित करने का प्रयास करने में जुटे हैं। बताया जा रहा है कि अगर स्वामीनाथन आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार उत्पादन लागत से 50% अधिक समर्थन मूल्य निर्धारित कर दिया जाये, तो कृषि किसानों के लिए लाभकारी हो जायेगी और उनका आर्थिक संकट दूर हो जायेगा। लेकिन हमने ऊपर किसानों में जो वर्ग भेद देखा था, क्या इन सबके लिए कृषि की उत्पादन लागत और लाभकारी मूल्य समान होना सम्भव है?

किसी भी क्रिस्म के माल उत्पादन में दो घटक होते हैं - स्थिर पूँजी (मशीनरी, तकनीक, कच्चा माल) और परिवर्तनशील पूँजी (श्रम शक्ति)। कृषि के लिए हम अगर भूमि के किराये को सबके लिए समान भी मान लें तो भी अन्य घटक की लागत सभी किसानों के लिए समान नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए मशीनरी जैसे ट्रैक्टर, श्रेशर, हार्वेस्टर, टिलर-कल्टीवेटर, आदि को ही लें तो इसकी लागत जितनी कम जोत वाला किसान हो उतनी ज़्यादा होती है, क्योंकि उसे प्रति एकड़ ज़मीन के लिए ज़्यादा पूँजी निवेश करना पड़ता है। अगर खरीदने की बजाय भाड़े पर भी प्रयोग हो तो भी लागत ज़्यादा आती है और समय पर उपलब्ध होने में दिक्कत से अवसर की लागत भी साथ में जुड़ जाती है। इसी तरह खाद, बीज, दवाएँ जैसे कच्चे माल की लागत भी खरीदने की कम मात्रा के साथ बढ़ती है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण है कम जोत वाले किसान द्वारा अनिवार्यतः पिछड़ी तकनीक के इस्तेमाल और परिमाण की मितव्ययता के अभाव में प्रति इकाई उत्पादन के लिए अधिक श्रम शक्ति का प्रयोग। कृषि विशेषज्ञों के अनुमान से छोटे किसान की प्रति इकाई उत्पादन लागत बड़े किसानों से 25% अधिक होती है।

बड़े और छोटे किसानों के बीच लागत मूल्य में यह अन्तर उनके लिए एक समान लाभकारी मूल्य के विचार को ही खारिज कर देता है। जो बाज़ार या समर्थन मूल्य बड़े किसान के लिए लाभकारी है, वही छोटे किसान के लिए अलाभकारी होगा। इस प्रकार पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों में अधिक पूँजी और उन्नत तकनीक के प्रयोग से कम उत्पादन लागत वाले पूँजीपति द्वारा कम पूँजी और पिछड़ी तकनीक द्वारा अधिक उत्पादन लागत पर उत्पादन करने वाले पूँजीपति को बाज़ार से बाहर कर देने का नियम कृषि उत्पादन में भी लागू होता है।

समर्थन मूल्य पर सरकारी एजेंसियों द्वारा खरीद की गारण्टी का अभाव इस स्थिति को ओर भी बदतर कर देता है। 2013 में उत्पादित गेहूँ का मात्र 25% ही सरकार ने खरीदा था; बाद के सालों में यह मात्रा और भी कम हुई है। छोटा किसान आमतौर पर कर्ज-उधार के सहारे उत्पादन करता है और फसल की कटाई के समय उसे बेचकर कर्ज लौटाना उसके लिए आवश्यक होता है नहीं तो ब्याज बढ़ जाता है। अक्सर कर्ज देने वाला ही खरीदार भी होता है। इस हालत में छोटा किसान गरजबेचा

होता है और खरीदार की मर्जी के दामों पर बेचने को मजबूर। जबकि बड़ा किसान एक ओर तो प्रशासनिक पहुँच से न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ उठा पाने की स्थिति में भी होता है; दूसरे, वह बाज़ार क्रीमतों का फ़ायदा उठा पाने के लिए ठहरने की स्थिति में भी होता है, अक्सर खुद ही छोटा व्यापारी भी होता है। वैसे भी सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदारी की गारण्टी के अभाव में खराब फसल की स्थिति को छोड़कर यह असल में न्यूनतम नहीं बल्कि अधिकतम मूल्य की तरह कार्य करता है।

वैसे यह भी बता दें कि कृषि लागत और मूल्य आयोग के अनुसार अभी भी सरकार लागत पर मुनाफ़े के साथ ही समर्थन मूल्य निर्धारित करती है; जैसे गेहूँ का कच्चे माल, भूमि का किराया, मशीनरी और श्रम की लागत सहित प्रति कुन्तल उत्पादन लागत 797 रुपये है और इसका समर्थन मूल्य इससे 104% अधिक 1625 रुपये है। लेकिन इसमें विभिन्न फसलों के बीच काफ़ी अन्तर है, जैसे मूँग के लिए यह उत्पादन लागत से 28% ही अधिक है। लेकिन सरकार द्वारा निर्धारित यह लाभकारी समर्थन मूल्य अधिकांश किसानों के लिए अलाभकारी है, क्योंकि उनकी उत्पादन लागत, जैसा कि हम ऊपर दिखा चुके हैं, सामान्य से अधिक होती है।

किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि दो हेक्टेयर तक की खेती कर रहे किसान के पास बाज़ार में बेचने वाला अधिशेष उत्पाद इतना होता ही नहीं कि लाभकारी मूल्य मिल जाने पर भी उसे जीवननिर्वाह योग्य आमदनी हो सके। इसके विपरीत उसे बाज़ार से उद्योग ही नहीं कृषि के भी बहुत सारे उत्पाद भोजन के लिए खरीदने होते हैं जिनकी बढ़ती क्रीमत उसे और संकट में डाल देती है। इसलिए कृषि उत्पादों सहित बाज़ार में किसी भी प्रकार के उत्पादों और सेवाओं की क्रीमतें बढ़ाने की बात इन छोटे और सीमान्त किसानों का आर्थिक संकट कम करने के बजाय उसे बढ़ाती है। साथ ही इन्हें अपने ही जैसे मेहनतकश खेत मजदूरों और शहरी मजदूरों और निम्न मध्य वर्ग के भी खिलाफ़ खड़ा करती है जो महँगाई के इस हमले के सबसे बड़े शिकार होते हैं।

पिछली यूपीए सरकार के समय, जब समर्थन मूल्यों में तुलनात्मक रूप से तेज़ी से वृद्धि हुई थी, कृषि सहित तमाम उत्पादों-सेवाओं के मूल्यों में भारी महँगाई का अधिकांश किसानों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है? क्या उससे किसानों के जीवन स्तर में कोई सुधार हुआ? उल्टे हम पाते हैं कि इस दौरान किसानों पर कर्ज में भारी इजाफ़ा हुआ। 2003-2013 के दस वर्षों में किसानों पर कर्ज 24% बढ़ा जबकि कृषि उत्पादन मात्र 13%। यही स्थिति 2014-16 की है जब कर्ज 17% बढ़ गया जबकि कृषि उत्पादन सूखे की वजह से मुश्किल से 3% ही बढ़ा। नतीजा यह हुआ कि सैम्पल सर्वे के अनुसार 60% से अधिक किसान कर्ज में हैं और इसकी

मात्रा (बैंकों और साहूकारों दोनों से) बढ़ी है। अर्थात् न्यूनतम समर्थन मूल्यों के बढ़ने से किसानों का लाभ बढ़कर कर्ज कम होने के बजाय बढ़ता चला गया। निष्कर्ष यह कि लाभकारी मूल्यों के दौर में भी अधिकांश किसान घाटे में थे और उनकी आमदनी कम हो रही थी जो बढ़ते कर्ज (किसान क्रेडिट कार्ड आदि इसी समय शुरू किये गये थे जिनमें उदारता से लिमिट बढ़ाई गयी!) के पीछे कुछ समय तक छिपी हुई थी। लेकिन यह कर्ज कभी तो वापस करना ही था जिसमें किसान अब अपने आप को असमर्थ पा रहे हैं और भयंकर निराशा-हताशा के शिकार हैं।

एक ओर तरह से देखें तो औद्योगीकरण के बाद सम्पूर्ण उत्पादन में खेती का हिस्सा लगातार घटा है, भारत में भी अब यह घटकर सिर्फ़ 14% रह गया है। हालाँकि खेती में उत्पादकता बढ़ने की सम्भावनाएँ अभी भी हैं लेकिन उद्योग/सेवा क्षेत्रों में उसके मुकाबले बहुत ज़्यादा विस्तार होना ही है, इसलिए कृषि का हिस्सा और भी घटने ही वाला है। अब कुल उत्पादन के इस छोटे, घटते हिस्से पर जनसंख्या के इतने बड़े हिस्से की निर्भरता रहेगी तो उनका ग़रीबी-कंगाली में रहना निश्चित ही है। उनमें भी जो 85% छोटे-सीमान्त किसान हैं (2 हेक्टेयर से कम वाले), आज की पूँजी आधारित खेती में कम उत्पादकता, अधिक श्रम, कम मात्रा में खरीदारी से बीज/खाद आदि की अधिक लागत, कम जोत में ट्रैक्टर आदि यन्त्र खरीदने या किराये पर लेने में पड़ने वाली ज़्यादा लागत, साहूकारों-आढ़तियों से सूद पर ली गयी पूँजी, सरकारी तन्त्र का धनी किसानों के साथ खड़े होने आदि के बहुत सारे कारणों से इनके लिए खेती घाटे का सौदा है, आगे और भी ज़्यादा होने वाला है।

खुद अधिकांश किसान इस बात को सचेत सैद्धान्तिक रूप में तो नहीं लेकिन व्यवहार में अच्छी तरह समझ चुके हैं और खेती में अपने लिए कोई भविष्य नहीं देखते। दूसरा कोई भी विकल्प हासिल होने पर खेती को तुरन्त छोड़ने के लिए तैयार हैं, छोटी-मोटी नौकरी के लिए रिश्त देने के लिए खेत तक बेचने को तैयार हैं। जो किसान जातियाँ एक समय नौकरी-चाकरी करने को ही बेइज़्जती का काम मानती थीं, उनके लिए भी आरक्षण इसीलिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है, हालाँकि उस रास्ते इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। खेत मजदूरों के लिए तो पहले ही पूरे साल रोज़गार मौजूद नहीं है, दूसरे पिछले कुछ साल से महँगाई के मुकाबले कृषि में मजदूरी की दर लगातार घट रही है। अतः किसानों और खेत मजदूरों दोनों के लिए पहले ही मुख्य सवाल वैकल्पिक रोज़गार और जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी बन चुका है। उनके लिए असली सवाल समर्थन मूल्य का नहीं, बल्कि जीवन निर्वाह योग्य रोज़गार प्राप्त करना है। इसलिए लाभकारी मूल्य की यह सारी लड़ाई मुख्यतः बादल, पवार,

(पेज 15 पर जारी)